वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656
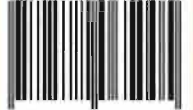
9 772582 065005

विवेक ज्योति

वर्ष ५८ अंक १०

अक्तूबर २०२०

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अक्तूबर २०२०

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५८
अंक १०

वार्षिक १६०/–　**एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. भगवती स्तुति: ४३७
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) ४३७
३. सम्पादकीय : मोहान्धनाशिनी मुक्तिविधायिनी माँ दुर्गा ४३८
४. इत्थं यदा यदा बाधा... (स्वामी अलोकानन्द) ४४०
५. (भजन) हम पर कृपा बरसाओ माँ! (गोपेश द्विवेदी) ४४५
६. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३४) (स्वामी अखण्डानन्द) ४४६
७. (भजन) जागो माँ! कुल कुण्डलिनी (गोपाल भारतीय) ४४८
८. हमारा पौराणिक साहित्य (डॉ. सुरेशचन्द्र शर्मा) ४४९
९. यथार्थ शरणागति का स्वरूप (९/५) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) ४५३
१०. (प्रेरक लघुकथा) भूले स्वयं स्वरूप देखि रूप अनूप (डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) ४५६
११. (बच्चों का आँगन) मुझे छोड़ दो, मैं अनाथ हूँ (ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य) ४५७
१२. आध्यात्मिक जिज्ञासा (५८) (स्वामी भूतेशानन्द) ४५८
१३. रामकृष्ण संघ में दुर्गापूजा (स्वामी तन्निष्ठानन्द) ४५९
१४. (युवा प्रांगण) मित्रता : एक अनमोल सम्बन्ध (मीनल जोशी) ४६६
१५. सारगाछी की स्मृतियाँ (९६) (स्वामी सुहितानन्द) ४६८
१६. भारत विश्व-इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ेगा (अजय कुमार पाण्डेय) ४७०
१७. गीतातत्त्व-चिन्तन – १० (नवम अध्याय) (स्वामी आत्मानन्द) ४७१

ISSN 2582-0656

१८. प्रश्नोपनिषद् (५)
(श्रीशंकराचार्य) ४७४
१९. साधुओं के पावन प्रसंग (२२)
(स्वामी चेतनानन्द) ४७५
२०. भगवन्नाम का संस्कार डालो
(स्वामी सत्यरूपानन्द) ४७८
२१. समाचार और सूचनाएँ ४७९

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर माँ दुर्गा की यह मूर्ति रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा में २०१९ ई. में दुर्गापूजा में पूजित हुई है।

अक्तूबर माह के जयन्ती और त्योहार

०२ गाँधी जयन्ती, लाल बहादुर शास्त्री
२४ दुर्गापूजा (महाष्टमी)
२६ विजयादशमी

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री राजेश तिवारी, मुम्बई	२,०००/-

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६१८. श्री सी.एल. साहू, (प्राचार्य) मगरलोड, धमतरी (छ.ग.)	गवर्नमेंट हायर सेकण्डरी स्कूल, मगरलोड, धमतरी (छ.ग.)
६१९. ,, ,,	गवर्नमेंट मीडिल स्कूल, भरदा, मगरलोड, धमतरी (छ.ग.)
६२०. ,, ,,	मधुबन पब्लिक स्कूल, परसवानी, मगरलोड, धमतरी (छ.ग.)
६२१. ,, ,,	गैलेक्सी सेकण्डरी स्कूल, मगरलोड, जिला - धमतरी (छ.ग.)
६२२. ,, ,,	सरस्वती शिशु मन्दिर स्कूल, मगरलोड, जिला -धमतरी (छ.ग.)

वर्ष ५८ अक्तूबर २०२० अंक १०

भगवती-स्तुतिः

चांचल्यारुणलोचनाञ्चितकृपां चन्द्रार्कचूड़ामणिं
चारुस्मेरमुखां चराचरजगत्संरक्षणीं सत्पदाम् ।
चञ्चच्चम्पकनासिकाग्रविलसन्मुक्तामणीरञ्जितां
श्रीशैलस्थलवासिनीं भगवतीं श्रीमातरं भावये ।।

– जिनके चंचल नेत्रों और अरुण नेत्रों से करुणा प्रकट हो रही है, चन्द्रमा और सूर्य जिनके मस्तक के आभूषण हैं, जिनका मुख सुन्दर मुस्कान से सुशोभित है, जो चराचर जगत की रक्षिका हैं, सत्पुरुष जिनके विश्रामस्थान हैं, शोभायमान चम्पा के समान सुन्दर नासिका के अग्रभाग में मोती की बुलाकी जिनकी शोभा बढ़ा रही है, श्रीशैल पर निवास करनेवाली उन भगवती श्रीमाता का मैं स्मरण करता हूँ ।

पुरखों की थाती

सर्पदुर्जनयोर्मध्ये वरं सर्पो न दुर्जनः ।
सर्पो दंशति कालेन दुर्जनस्तु पदेपदे ।।६९९।।

– साँप और दुष्ट – इन दोनों के बीच दुष्ट की तुलना में साँप कहीं अच्छा है, क्योंकि साँप कभी एक बार ही डँसता है, परन्तु दुष्ट तो पग-पग पर डँसता रहता है।

प्रलये भिन्नमर्यादा भवन्ति किल सागराः ।
सागरा भेदमिच्छन्ति प्रलयेऽपि न साधवः ।।७००।।

– प्रलय आने पर समुद्र भी अपनी सीमा को तोड़कर अपने आसपास के स्थानों को डुबा देना चाहते हैं, परन्तु साधु-सज्जन लोग प्रलय या विपत्ति आने पर भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते।

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिता।
वासितं तद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा।।७०१।।

– जैसे सुन्दर सुगन्धित फूलों से भरा हुआ एक ही वृक्ष सम्पूर्ण वन को सुशोभित कर देता है, वैसे ही एक ही सुपुत्र के द्वारा पूरा कुल धन्य हो जाता है।

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे।
असाधुजनसम्पर्के यः पलायति स जीवति।।७०२।।

– जहाँ दंगा-फसाद या उपद्रव हो रहा हो, जहाँ लड़ाई-झगड़ा या युद्ध हो रहा हो, जहाँ भयानक अकाल पड़ा हो और जहाँ दुष्ट लोगों से पाला पड़ जाय, वहाँ से भाग निकलने वाला व्यक्ति ही जीवित बचता है।

मोहान्धनाशिनी मुक्तिविधायिनी माँ दुर्गा

आदिशक्ति जगदम्बा माँ दुर्गा की उपासना विभिन्न प्रकार के लोग विभिन्न लौकिक उद्देश्यों – धन-सम्पत्ति, राज्य, पुत्रादि एवं व्याधिमुक्ति हेतु करते हैं और माँ दुर्गा उन सबकी मनोकामना पूर्ण करती हैं। किन्तु सच्चा भक्त कभी लौकिक कामना नहीं करता। वह सदा इस जागतिक प्रपंचों से मुक्ति और भगवान की भक्ति चाहता है। २७ अक्तूबर, १८८२, शरत्-पूर्णिमा के दिन ब्राह्मभक्तों के संग वार्तालाप के समय श्रीरामकृष्ण देव ने कहा था – "मैंने माँ से केवल भक्ति माँगी थी। हाथ में फूल लेकर माँ के पादपद्मों में चढ़ाया था, कहा था – माँ यह लो तुम्हारा पाप, यह लो तुम्हारा पुण्य, मुझे शुद्ध भक्ति दो; यह लो तुम्हारा ज्ञान, यह लो तुम्हारा अज्ञान, मुझे शुद्ध भक्ति दो; यह लो तुम्हारी शुचिता, यह लो तुम्हारी अशुचिता, मुझे शुद्ध भक्ति दो; यह लो तुम्हारा धर्म, यह लो तुम्हारा अधर्म, मुझे शुद्ध भक्ति दो।"[१]

मानव द्वारा जन्म-जन्मान्तरों से चिर-अभिलषित मुक्तिप्राप्ति के अनेक साधन हैं, किन्तु मुक्ति की प्राप्ति में सर्वाधिक सहायता माँ जगदम्बा से मिल सकती है। क्योंकि पिता में कठोरता हो सकती है, लेकिन माता में सन्तान के प्रति स्वभावसुलभ वात्सल्य होता है, ममत्व होता है। जब माता के द्वारा पुत्र पर ममता, स्नेह, वात्सल्य का वर्षण होता है, तो कठिन-से-कठिन कार्य भी सरल हो जाता है। जब वात्सल्यमयी माता के सान्निध्य में साधना होती है, तो वह द्रुत फलदायी होती है। माँ के ममत्व के सान्निध्य में कठोर साधन-मार्ग भी सरल हो जाते हैं, मुक्ति सहजता से करतलगत हो जाती है। अत: मुक्तिकामी को शक्तिस्वरूपिणी माँ दुर्गा की शरण में जाना चाहिए। देवों ने भी प्रार्थना की थी – **सर्वभूता यदा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी –** तुम सर्वस्वरूपा देवी भोग तथा मोक्षप्रदान करनेवाली हो।[२]

२४ अगस्त, १८८२ को वार्तालाप के दौरान श्रीरामकृष्ण ने श्रीरामकृष्ण-वचनामृत के प्रणेता महेन्द्रनाथ गुप्त 'श्रीम' को कहा था – "कोई ईश्वर को प्राप्त करना चाहे, तो उसे पहले आद्याशक्तिरूपिणी महामाया को प्रसन्न करना चाहिए। वे संसार को मुग्ध करके सृष्टि, स्थिति और प्रलय कर रही हैं। उन्होंने सबको अज्ञानी बना डाला है। वे जब द्वार से हट जाएँगी, तभी जीव भीतर जा सकता है। बाहर पड़े रहने से केवल बाहरी वस्तुएँ देखने को मिलती हैं, नित्य सच्चिदानन्द पुरुष नहीं मिलते। इसलिये पुराणों में है, सप्तशती में – मधु-कैटभ का वध करते समय ब्रह्मादि देवता महामाया की स्तुति कर रहे हैं।

"संसार का मूल आधार शक्ति ही है। उस आद्याशक्ति के भीतर विद्या और अविद्या दोनों हैं – अविद्या मोहमुग्ध करती है। अविद्या वह है, जिससे कामिनी और कांचन उत्पन्न हुए हैं, वह मुग्ध करती है। विद्या वह है, जिससे भक्ति, दया, ज्ञान और प्रेम की उत्पत्ति हुई है, वह ईश्वर-मार्ग पर ले जाती है।

"उस अविद्या को प्रसन्न करना होगा। इसीलिये शक्ति की पूजा-पद्धति हुई।[३]

मुक्तिप्राप्ति में सबसे बड़ा बाधक मोहान्धकार है। आदिशक्ति जगदम्बा की अविद्याशक्ति संसार के प्राणियों को सांसारिक वस्तुओं के मोह-पाश में फँसाकर उसे परमात्मा से दूर कर देती है और विविध प्रकार के कष्ट देती रहती है। जब माँ कृपा कर अपनी अविद्या माया को हटा लेती हैं, तब जीव माया-पाश से, लोक-बन्धनों से मुक्त हो परम तत्त्व का साक्षात्कार कर लेता है।

देवता इस तथ्य को जानते थे कि देवी ने ही समस्त संसार को मोह में बाँध रखा है। वे जब प्रसन्न होकर अपनी माया का संवरण कर लेंगी, तभी मोहान्धता का नाश होगा। अत: देवी के द्वारा शुम्भ-वध करने के बाद देवों ने माँ की स्तुति करते हुए कहा था –

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्।।[४]

– हे देवि! विद्याओं में ज्ञान को प्रकाशित करनेवाली, शास्त्रों में तथा आदिवाक्यों (वेदों) में तुम्हारे सिवाय और किसका वर्णन है? तथा तुमको छोड़कर दूसरी कौन ऐसी शक्ति है, जो इस विश्व को अज्ञानमय घोर अन्धकार से परिपूर्ण ममता रूपी गड्ढे में निरन्तर भटका रही हो।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव कभी-कभी इस भजन को गाते थे – 'एमनी महामायार माया रेखेछे कुहुकि करे।' इसका भावार्थ है – ''महामाया की विचित्र माया है! कैसा मोह-जाल फैलाकर रखा है! जिसके प्रभाव से ब्रह्मा-विष्णु भी अचैतन्य हैं, फिर जीव की क्या बात? बिछे हुए जाल में मछली प्रवेश करती है, पर आने-जाने का मार्ग रहते हुए भी उसमें से भाग नहीं सकती।''

महामाया के इस माया-मोह से बड़े-बड़े साधकवृन्द भी अत्यन्त कठिनता से बच पाते हैं। कबीरदासजी ने माया को पहचान कर कहा था –

माया महाठगिनी हम जानी।
तिरगुन पाश लिये कर फेरत बोलत मधुरी बानी।।

– माया! मैं जानता हूँ, तुम महाठगिनी हो। त्रिगुण पाश लेकर घूमती हुई मधुर वाणी बोलती हो और जीव को अपने पाश में फँसा लेती हो।

माया से बचने के लिये मायाधीश्वरी माँ जगदम्बा से प्रार्थना करने पर वह भक्त के चित्त से अपनी माया को, मोह को दूर कर देती हैं और मोक्ष प्रदान करती हैं। इसीलिए देवगण माँ से प्रार्थना करते हुए कहते हैं –

त्वं वैष्णवीशक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः।।[५]

– हे देवि! तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्व की कारणभूता परा माया हो। देवि! तुमने इस समस्त जगत को मोहित कर रखा है। तुम्हीं प्रसन्न होने पर इस पृथ्वी पर मोक्ष की प्राप्ति कराती हो।

या मुक्तिहेतुर्विचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवति परमा हि देवि।।[६]

– ''देवि! जो मोक्ष की प्राप्ति का साधन है, अचिन्त्यमहाव्रतस्वरूपा है, समस्त दोषों से रहित जितेन्द्रिय तत्त्व को ही सार वस्तु माननेवाले तथा मोक्ष की अभिलाषा रखनेवाले मुनिजन जिसका अभ्यास करते हैं, वह भगवती पराविद्या आप ही हैं।'' इस प्रकार देवों ने माँ जगदम्बा से मोहनाश और मोक्ष की प्रार्थना की थी।

श्रीरामकृष्ण द्वारा गाए गए इस भजन में माया की भयंकरता और उससे बचने हेतु माँ दुर्गा से आर्त्त प्रार्थना का स्वर अभिव्यंजित होता है – ''माँ भवसागर में पड़कर शरीर रूपी यह नौका डूब रही है। हे शंकरि! माया की आँधी और तूफान अधिकाधिक तेज हो रहा है। एक तो मन रूपी माँझी अनाड़ी है, उस पर छह खेवैये गँवार हैं। आँधी में मँझधार में आकर डूबा जा रहा हूँ। भक्ति का डाँड़ टूट गया, श्रद्धा का पाल फट गया, नाव काबू से बाहर हो गयी, अब मैं उपाय क्या करूँ? और तो कोई उपाय नहीं दीखता, सोचकर लाचार हो रहा हूँ। तरंग में तैरकर श्रीदुर्गा-नाम रूपी नाव को पकड़ता हूँ।''[७]

अद्वैतवादी श्रीआदिशंकराचार्यजी भी माँ जगदम्बा से दीनार्त्त हो कहते हैं कि माँ इस अपार भवसागर में दुखग्रस्त, कामी, लोभी, प्रमत्त और संसार-पाश से बद्ध हूँ। हे भवानी! एक तुम्हीं हमारी गति हो ! –

भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः
प्रपन्नः प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः।
कुसंसारपाशप्रबद्धः सदाऽहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानी।।

इस प्रकार बहुत से साधक, भक्त माँ दुर्गा की शरण ले माया-मोह से मुक्त हो मुक्ति-पद के अधिकारी हुए। हे माँ! अपनी वात्सल्य-दृष्टि से संसार के समस्त प्राणियों के मोह, अज्ञानता का नाश कर उन्हें मुक्तहस्त से मुक्ति प्रदान करो, यही तेरे चरणों में प्रार्थना है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. श्रीरामकृष्णवचनामृत १/८८, **२.** श्रीदुर्गासप्तशती, ११/७, **३.** श्रीरामकृष्णवचनामृत १/५९-६०, **४.** श्रीदुर्गासप्तशती ११/३१, **५.** वही, ११/५, **६.** वही, ४/९, **७.** श्रीरामकृष्णवचनामृत १/१११.

इत्थं यदा यदा बाधा ...

स्वामी अलोकानन्द

(स्वामी अलोकानन्द जी महाराज वेद विद्यालय बेलूड़ मठ के पूर्व प्राचार्य थे। वर्तमान में रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी में सेवारत हैं। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु इस निबन्ध का बँगला से हिन्दी रूपान्तर वाराणसी के ही श्रीरामकुमार गौड़ जी ने किया है। – सं.)

श्रीभगवान युग की आवश्यकता के अनुसार अपनी मायाशक्ति का आश्रय लेकर अवतार रूप धारण करते हैं – यह बात बहुत प्रचलित और सर्वजनविदित है। आद्याशक्ति महामाया भी युग-प्रयोजन के अनुसार विविध कल्पों में विविध रूपों में अवतीर्ण होती रहती हैं। इस बारे में देवी भागवत, देवीपुराण, मार्कण्डेयपुराण आदि ग्रन्थों से हम जान सकते हैं। स्वामी गम्भीरानन्द जी ने लिखा है, 'अग्नि और उसकी दाहिकाशक्ति की तरह अभिन्न ईश्वर और ईश्वर की शक्ति का शरीर-धारण एक ही उद्देश्य से होता है।''[१]

मार्कण्डेय पुराण में वर्णित श्रीचण्डी के वर्णनानुसार इसके पूर्व जगत की रक्षा के लिये देवी के महाकाली महालक्ष्मी, महासरस्वती, ब्रह्माणी आदि विविध अवतारों के सम्बन्ध में हम जान सकते हैं। मधुकैटभ, महिषासुर, रक्तबीज, चण्ड-मुण्ड, शुम्भ-निशुम्भ वध के पश्चात् देवताओं की स्तुति से संतुष्ट होकर देवी ने उन्हें वरदान के समय नन्दा आदि सात भविष्य अवतारों की बात कही है। अन्त में वे आश्वासन देते हुए बोलीं –

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्।।[२]

– इस तरह जब जब दानव बाधा उभरेगी, मैं अवतीर्ण होकर वह बाधा दूर करूँगी।

उनके अवतार असंख्य हैं। शान्तनवी टीकाकार ने इस प्रसंग में कहा है - **''इदानीं देव्या अवतारान्तराणां तत्कार्याणां च आनन्त्यात् साकल्येन वक्तुमशक्यत्वात् संक्षिप्य तत्कथामुपसंहरति।''**[३]

यद्यपि देवी नित्य हैं, तथापि कल्प-कल्प में कार्य के अनुरोध पर उनका यह अवतार धारण होता है। देवी के माहात्म्य के वर्णन के समय मेधस मुनि महाराज ने सुरथ और समाधि वैश्य से कहा –

''देवानां कार्य सिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।।''[४]

गुप्तवती टीकाकार एलम्बा, तुलजा, एकवीरा, योगला आदि ने देवी के अनेक अवतारों की बात शास्त्रवचनों को उद्धृत करके दिखाई है। हम इस लेख में 'श्रीदुर्गासप्तशती' में देवी के अपने मुख से कथित नन्दादि सात रूपों के विषय में विवेचन करेंगे।

१. नन्दा - देवी कहती हैं, वैवस्वत मन्वन्तर में २८वें युग में शुम्भ-निशुम्भ नामक दो भयंकर असुरों का वध करने के लिये वे नन्दगोप के घर में जन्म ग्रहण करेंगी और विन्ध्यपर्वतवासिनी होंगी। किन्तु 'श्रीदुर्गासप्तशती' के नवम और दशम अध्याय में निशुम्भ और शुम्भ के वध का वृत्तान्त है। उसके पश्चात् 'नाशयिष्यामि' – ऐसी भविष्यवाणी का सामंजस्य कैसे सम्भव है? यहाँ ध्यान रखना होगा कि स्वारोचिष मन्वन्तर में मेधस मुनि ने महाराज सुरथ और समाधि वैश्य को देवी-माहात्म्य के वर्णन प्रसंग में वह कहानी बताई है। स्वायम्भुव आदि चतुर्दश मन्वन्तर में द्वितीय मन्वन्तर है स्वारोचिष। फिर नन्दा रूप में देवी का आविर्भाव ७१ चतुर्युग काल तक सप्तम मन्वन्तर वैवस्वत के २८वें युग में द्वापर और कलियुग के सन्धिक्षण में हुआ। इस समय दुराचारी कंस के वध के लिए श्रीभगवान कृष्ण रूप में आविर्भूत होंगे। इसीलिए उन्होंने महामाया को निर्देश दिया, ''गच्छ देवि ब्रजं भद्रे।''[६] देवी भी नन्द-यशोदा की कन्या के रूप में जन्म ग्रहण करेंगी। भगवान श्रीमद्भागवत में कहते हैं –

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि।।[७]

नन्दा देवी महालक्ष्मी की अंशभूता हैं। मूर्तिरहस्य में उनका स्वरूप वर्णित हुआ है –

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
सा स्तुता पूजिता ध्याता वशीकुर्याज्जगत्रयम्।।
कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्ति कनकाम्बरा।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा।।
कमलांकुशपाशाब्जैरलंकृतचतुर्भुजा।
इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्रीरुक्माम्बुजासना।।[८]

श्रीश्रीचण्डी के तत्त्वप्रकाशिका टीकाकार पुराण की कहानी का उल्लेख करके कहते हैं, एक बार विन्ध्याचल में अतिशय बलवान शुम्भ और निशुम्भ नामक दो असुर निवास करते थे। उनके सामने नन्दा देवी के आने पर दोनों ने ही उन्हें पत्नी के रूप में पाना चाहा। देवी उनसे बोलीं – ''तुममें से अधिक बलशाली की ही मैं सेवा करूँगी।'' तब दोनों ने घोर युद्ध में लिप्त होकर आपस में एक-दूसरे का वध कर दिया।[९]

महाभारत में युद्धिष्ठिर-कृत स्तोत्र में विन्ध्यवासिनी देवी के सम्बन्ध में उद्धरण है – **विन्ध्ये चैव नगश्रेष्ठे तव स्थानं हि शाश्वतम्।**[१०] पद्मपुराण में देवी-क्षेत्र की गणना में कहा गया है –

विन्ध्येऽवतीर्थदेवार्थं हतो घोरो महाभटैः।
अद्यापि तत्र सावासा तेन सा विन्ध्यवासिनी।।[११]

वामनपुराण में इन्द्र द्वारा विन्ध्याचल में स्थापित देवी के वर्णन में है –

सहस्राक्षोऽपि तां गृह्य विन्ध्यं वेगाज्जगाम च।
तत्र गत्वा त्वथोवाच तिष्ठ चात्र महाचले।
पूज्यमाना सुरैर्नाम्ना ख्याता त्वं विन्ध्यवासिनी।।[१२]

इन सभी बातों से देवी को नन्द गोप के घर में उत्पन्न नन्दा और विन्ध्यावासिनी होकर भयंकर दो असुरों की विनाशकारिणी के रूप में जाना जाता है। आज भी विन्ध्याचल में देवी भक्तों की पूजा ग्रहण कर रही हैं।

तत्त्वदृष्टि से विन्ध्याचल हृदयप्रदेश है। तंत्रशास्त्र में सुमेरु पर्वत को मस्तक, विन्ध्यपर्वत को हृदय और कुलपर्वत को मूलाधार रूप में वर्णित किया गया है। विन्ध्याचल जीव का हृदयदेश है। गोप शब्द का अर्थ है – **गाः पाति गोपः** अर्थात् सभी इन्द्रियों के पालक, रक्षक। लगता ही है कि

वे रक्षक हैं। मन रूपी गोप जब नन्द अर्थात् आनन्दस्वरूप आत्मा के अभिमुख होता है, तब वे यशोदानकारिणी यशोदा की गोद में अवस्थान करके शुम्भ-निशुम्भ रूपी असुरों का विनाश करती हैं। इसीलिए उनका नाम नन्दा शक्ति है।

२. रक्त दन्तिका : अग्निपुराण में कहा गया है, कश्यप मुनि की पत्नी दिति के गर्भ से हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु नामक दो पुत्र तथा सिंहिका और नाम्नी नामक दो कन्याओं का जन्म हुआ। विप्रचित्ति ने सिंहिका से विवाह किया और उसके गर्भ से राहु इत्यादि चौदह असुरों ने जन्म लिया। वायुपुराण में (६८ अध्याय में) इनका नाम मिलता है – शतगाल, न्यास, शाम्ब, अनुलोम, शुचि, वातापि, सितांशुक, हरकल्प, कालनाभ, नरक, भौम, राहु, चन्द्रप्रमर्दन, सूर्यप्रमर्दन। ये सभी 'वैप्रचित्त' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन विप्रचित्तिवंशीय असुरों का भक्षण करने के लिए देवी के दन्तसमूह अनार के पुष्पों के समान रक्तवर्ण हो गए। इसीलिए उनका नाम 'रक्त दन्तिका' है। उनका सर्वांग रक्त-रंजित होने के कारण उन्हें रक्तचामुण्डा भी कहा गया। मूर्ति रहस्य में उनका वर्णन हुआ है –

रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वांगभूषणा।
रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा।।
रक्ततीक्ष्णनखा रक्तवसना रक्तदन्तिका।।[१३]

देवी ने स्वयं अपने इस अवतार की घोषणा करके कहा है –

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले।
अवतीर्ण हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान्।।[१४]

विप्रचित्त अर्थात् विपरीत चित्त। ईश्वर के विरूद्ध आसुरी शक्ति रहती है। आसुरी शक्ति जीवन को विपथगामी बनाकर भटका देती है, आत्मस्वरूप को भुला देती है। इसीलिए देवी उन असुरों को कवलित करके (ग्रास बनाकर) जीव का अध्यात्म-पथ आलोकित करती हैं। दन्तसमूह सब कुछ चबा डालते हैं। गीता में श्रीभगवान ने अर्जुन को दिखाया – **केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु**। अनार के पुष्प के रंगवाली रक्तदन्तिका देवी ने जीवों पर कृपा करने के लिये अवतीर्ण होने का वचन दिया।

३. शताक्षी :

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ संभविष्याम्ययोनिजा।।[१५]

देवीभागवत में कहा गया है कि प्राचीन काल में रुद्र नामक असुर के पुत्र दुर्गमासुर ने सोचा कि देवताओं की शक्ति हैं, वेद। अत: यदि वेद को आयत्त कर लिया जाय, तो देवतागण शक्तिहीन हो जायेंगे। इसलिये वेद को प्राप्त करने के लिये उसने कठोर तपस्या की। ब्रह्मा ने सन्तुष्ट होकर उसे उसके द्वारा प्रार्थित वेद और देवताओं को पराजित करने की शक्ति दे दी। असुर के वेद के अधीश्वर होने से वेदविहित यज्ञादि कर्म विलुप्त हो गए। तब असुर ने स्वर्गराज्य पर आक्रमण करके देवताओं को भगा दिया। निराश्रय होकर देवताओं ने पर्वतों की गुफाओं में आश्रय लिया। इधर वेदविहित यज्ञादि के अभाव में पृथ्वी पर अनावृष्टि हो गई। फलस्वरूप तृण, लता, धान्यादि सूख गए। नदी-नाले, तालाब जलहीन हो गए। ऐसे संकट काल में मुनिगण पर्वत के नीचे जाकर देवी की स्तुति करने लगे। देवी संतुष्ट होकर शताक्षी रूप में प्रकट हुईं।

इति संप्रार्थिता देवी भुवनेशी महेश्वरी।
अनन्ताक्षिमयं रूपं दर्शयामास पार्वती।।[१६]

चतुर्भुजा देवी के दोनों दाहिने हाथ में शरमुष्टि और कमल तथा वाम हस्तद्वय में क्षुधा-तृष्णाविनाशक पुष्प-पल्लव, फलमूलादि और महाशवासन था। उनके नेत्रों से नौ दिनों तक वर्षा हुई। मुनियों ने उस देवी की स्तुति करते हुए कहा –

अस्मच्छान्त्यर्थमतुलं लोचनानां सहस्रकम्।
त्वया यतो धृतं देवि शताक्षी त्वं ततो भव।।[१७]

श्रीदुर्गासप्तशती में देवी ने भी स्वयं कहा है -

ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तियिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः।।[१८]

अर्थात्, जब जगत में धर्म का ह्रास होता है, तब देवी शताक्षी रूप में आविर्भूत होती हैं। 'शत' बहुलता का सूचक है। 'विश्वतश्चक्षुरुत' परमसत्ता जीवकल्याण हेतु आविर्भूत होकर उनके प्रति करुणा की वृष्टि करती रहती है। अत: देवी भी शताक्षी रूप में जीवों के कल्याण के लिए आविर्भूत हुईं।

४. शाकम्भरी : इसके बाद देवी कहती हैं, "इसके पश्चात् मैं अपने देह से उत्पन्न जीवन-रक्षक पत्रादि शाक द्वारा वर्षा नहीं होने तक सभी लोगों का पालन करूँगी। इसलिए तब मैं शाकम्भरी नाम से परिचित होऊँगी।"[१९]

शताक्षी रूप में देवी ने करुणा-वृद्धि की, किन्तु जीवों को पुष्ट होने के लिये भोजन की आवश्यकता है। विराट

रूप से विस्तृत अपनी देह में देवी ने पौष्टिक शाक का सृजन किया। शाक द्वारा जीवों का पालन किया, इसीलिये नाम पड़ा – 'शाकम्भरी' – **शाकेन बिभर्ति पुष्णाति इति शाकम्भरी** (तत्त्वप्रकाशिका टीका)।[२०] जलाभाव के कारण भूमि में उत्पादन सम्भव नहीं, इसीलिये 'आत्मदेहसमुद्भवैः शाकैः' कहा। 'शाक' कहने से क्या समझ में आता है? अमरकोष के टीकाकार भरत कहते हैं – **शक्यते भोक्तुमनेन इति शाकम्।**[२१] यह शाक दस प्रकार का है –

मूलपत्र-करीराग्र-फल-कांडाधिरूढकम्।

त्वक् पुष्पं कवकश्चैव शाकं दशविधं स्मृतम्।।[२२]

अर्थात् मूल - मूलकादि, पत्र - परवल आदि, करीर – बांस का करीर आदि, अग्र - बेंत आदि, फल - कुम्हड़ा आदि, कांड - कमल-नाल आदि, अधिरूढ़क - ताड़ फल का गूदा आदि, त्वक् – मातुतुंगादि, पुष्प – कोविदार आदि एवं कवक – मशरूम आदि। देवी भागवत में कहा गया है – देवता और मुनियों ने भूख से कातर होकर देवी से भोजन की प्रार्थना की, तब भगवती ने उन्हें सुस्वादु फल, मूल और शाक प्रदान किया।

पृथ्वी तत्त्व ही आत्मा की देह है। उससे उद्भूत प्राणधारक शाक आदि जीव की पुनः वर्षा होने तक रक्षा करेगा। वर्षा अर्थात् परमात्मा की आनन्द धारा में साधक जब तक अभिस्नात नहीं होता, तब तक देवी की पालनी शक्ति उसके शोकसन्तप्त हृदय में शान्ति की हवा देती रहेगी।

५. दुर्गा - शताक्षी रूप में देवी ने अनन्त नेत्रों से वर्षा द्वारा जीवलोक को सुख प्रदान किया। शाकम्भरी रूप से आत्मदेह-समुद्भूत दस प्रकार के शाक द्वारा जीवों का सुख-विधान किया। किन्तु अभी भी दुर्गमासुर जीवित है। इस बार वे दुर्गमासुर का वध करके 'दुर्गा' नाम से प्रसिद्ध होंगी। इसीलिए कहती हैं –

तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम्।

दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्याति।।[२३]

यहाँ शंका होती है कि महिषासुरमर्दिनी दुर्गा और दुर्गमासुरघातिनी दुर्गा एक ही हैं या भिन्न हैं? क्योंकि काल आदि का विचार करने पर दोनों में अन्तर समझ में आता है। महिषासुरमर्दिनी का आविर्भाव स्वायम्भुव अर्थात् प्रथम मन्वन्तर में ('देवासुरमभुद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा')[२४] तथा लीला-स्थल हिमालय में और कार्य महिषासुर वध। दुर्गमासुरघातिनी का आविर्भाव वैवस्वत मन्वन्तर में लीला स्थल विन्ध्याचल तथा कार्य दुर्गमासुर वध। देवीभागवत में देवी देवताओं से कहती हैं –

दुर्गमासुरहन्त्रीत्वाद् दुर्गेति मम नाम यः।

गृह्णाति च शताक्षीति मायां भित्वा व्रजत्यसौ।।[२५]

स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में दुर्गासुर का वध करके उनका दुर्गा नाम प्रसिद्ध होने की बात बताई गई है। दुर्गम और दुर्गासुर एक ही व्यक्ति है। काशीखण्ड के वर्णनानुसार दुर्गासुर के साथ युद्ध विन्ध्याचल में ही हुआ था।

शताक्षी देवी के आविर्भाव का समाचार सुनकर दुर्गमासुर सेना सहित युद्ध के लिये चल पड़ा। तब देवी के शरीर से काली, तारा आदि शक्तियों ने निकलकर दैत्यों की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। युद्ध के ग्यारहवें दिन देवी ने दुर्गमासुर का वध कर निज 'दुर्गा' नाम की घोषणा की –

अद्यप्रभृति मे नाम दुर्गेति ख्यातिमेष्यति।

दुर्गदैत्यस्य समरे पातनादतिदुर्गमात्।।[२६]

तीनों लोकों में शान्ति स्थापित हुई। मुनियों ने स्तुति की –

जगद्भ्रमविवर्तैककारणे परमेश्वरि।

नमः शाकम्भरि शिवे नमस्ते शतलोचने।।

सर्वोपनिषदुद्घुष्टे दुर्गमासुरनाशिनि।

नमो महेश्वरि शिवे पंचकोषान्तरास्थिते।।''[२७]

देवी भागवत के टीकाकार नीलकण्ठ कहते हैं, शताक्षी आदि तीनों नाम एक ही भगवती के जल दान आदि के कार्यभेद से हैं, अवतार भेद से नहीं। परन्तु नागोजी भट्ट उनके आविर्भाव काल के बारे में कहते हैं, वैवस्वत मन्वन्तर के ४०वें चतुर्युग में देवी शताक्षी शाकम्भरी रूप में अवतीर्ण होंगी। लक्ष्मीतंत्र में भी कहा गया है – **''तस्मिन्नेवान्तरे शक्र चत्वारिंशततमे युगे।''** इन सभी वचनों के अवलम्बन से शताक्षी, शाकम्भरी और दुर्गा देवी के अवतार भेद से तीन नाम हुए हैं, ऐसा कहा जाता है।

६.भीमा – लक्ष्मीतन्त्र के मतानुसार भीमा, काली की अंशसम्भूता हैं। और भी कहा गया है – वैवस्वत मन्वन्तर के ५०वें चतुर्युग में उनका आविर्भाव होगा। वे नीलवर्णा, दंष्ट्राकरालवदना हैं। उनके हाथ में चन्द्रहास, डमरू, नरमुंड, पानपात्र रहता है। वे एकवीरा और कालरात्रि नाम से भी पुकारी जाती हैं। ये निद्रा और दुरतिक्रम्या तृष्णातरंगिणी हैं।

श्रीश्रीचण्डी के मूर्तिरहस्य में उनके रूप का वर्णन मिलता है –

भीमापि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा।
विशाल लोचना नारी वृत्त पीन-पयोधरा।।
चन्द्रहासं च डमरूं शिवं पात्रं च बिभ्रती।
एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता।।[२८]

देवी ने स्वयं वचन देकर कहा है कि वे मुनियों के परित्राण के लिये हिमालय में भीषणमूर्ति धारणकर राक्षसों पर विजय करेंगी। मुनिगण उन्हें भीमा नाम प्रदान करेंगे।

७. भ्रामरी : श्रीश्रीचण्डी में देवी द्वारा वर्णित भ्रामरी रूप उनका सप्तम अवतार है। देवी ने कहा है, जब अरुण नाम का असुर त्रिभुवन में उत्पात करेगा, तब वे भ्रामरी रूप में अवतीर्ण होकर असुर का वध करेंगी। लक्ष्मीतन्त्र में भ्रामरी देवी का आविर्भाव काल वैवस्वत मन्वन्तर के ६०वें चतुर्युग में है। नागोजी भट्ट ने उन्हें काली का अंश कहा है। गुप्तवती टीकाकार भास्कर राय के मत से भीमरथी और काकिनी नदी के संगम में अनुगुण्ठ क्षेत्र में एवं उसके पूरब ओर सन्निति क्षेत्र में चन्द्रला परमेश्वरी नाम से प्रसिद्ध उनकी कुलदेवी भ्रमरा हैं।[२९]

देवीभागवत के वर्णनानुसार पाताल के राजा अरुण नामक असुर ने अमर होने के लिये कठोर तपस्या की थी। ब्रह्माजी ने कहा – ''देवतागण भी मृत्युग्रस्त हैं। तुम्हें कैसे अमरत्व का वरदान दूँ? तब असुर ने कहा –

न युद्धेन च शस्त्रास्त्रान्न पुंभ्यो नापियोषितः।
द्विपाद्भ्यो वा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतस्तथा।।
भवेन्मे मृत्युरित्येवं देव देहि वरं प्रभो।।[३०]

– हे प्रभो, युद्ध, अस्त्र, शस्त्र, पुरुष अथवा नारी, द्विपद, चुतष्पद अथवा दोनों के आकार से मेरी मृत्यु न हो, यही वर दीजिए। ब्रह्माजी भी 'तथास्तु' कहकर चले गए। असुर ने अहंकार में मत्त होकर स्वर्ग राज्य पर आक्रमण किया। देवतागण भयभीत होकर महादेव के शरणागत हुए। उसी समय आकाशवाणी हुई, ''तुम लोग भुवनेश्वरी का भजन करो। वे ही सब कार्य करेंगी। दैत्यराज से गायत्री को त्याग कराओ।'' देवताओं ने बृहस्पति को भेजकर छलपूर्वक दैत्यराज से गायत्री का त्याग करा दिया। निस्तेज असुर की मृत्यु के लिये देवताओं द्वारा देवीयज्ञ करने से प्रसन्न होकर देवी भ्रामरी-मूर्ति में आविर्भूत हुईं। देवताओं द्वारा उनसे असुर-वध की प्रार्थना करने पर देवी ने अपने हाथ में स्थित असंख्य भ्रमरों को भेजा। भ्रमरवाहिनी ने अरुणासुर की सेना के वक्षस्थलों को विदीर्ण करके विनष्ट कर दिया। शीघ्र ही अरुणासुर समेत असुर-समूह का विध्वंस हो गया।

पुराणों आदि में देवी के भ्रामरी नाम की अनेक व्याख्याएँ मिलती हैं। सप्तशती चण्डी के टीकाकार नागोजी भट्ट कहते हैं – **''भ्रमरं पाणिधृतभ्रमरम्। असंख्येयाः षट्पदाः यस्मिन् रूपे तत्।''**[३१] देवीभागवत में है –

भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद् भ्रामरी या ततः स्मृता।
तस्यै देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमो नमः।।[३२]

टीकाकार शैव नीलकण्ठ कहते हैं, **''भ्रमराणामियं स्वामिनी भ्रामरी।''**[३३] मूर्ति रहस्य में उनका रूप वर्णित हुआ है –

तेजोमंडलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत्।
चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता।
चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते।।[३४]

देवी के इन सभी अवतारों के आविर्भाव-काल के सम्बन्ध में लक्ष्मीतन्त्र में कहा गया है – ये वैवस्वत मन्वन्तर में विभिन्न समयों में आविर्भूत होंगी। देवी के सभी अवतार मन्वन्तर और युग-भेद से इसी कल्प के पूर्ववर्ती कल्पों में आविर्भूत हुए थे। गुप्तवती टीकाकार ने स्पष्ट कहा है – **''परन्तु साम्प्रतिकाच्छ्वेतवराहकल्पात् प्राक्तन-कल्पेष्वपि देव्यावतारानामेतेषां मन्वन्तर-युग-भेदेन जातत्वाच्छाकम्भर्यादीनां तत्तत् कुलदेवतात्वेन अर्चनमधुनातनानां संगच्छत एव।''** – किन्तु याद रखना होगा कि वर्तमान श्वेत वराह कल्प के पूर्ववर्ती कल्पों में भी देवी के ये सभी अवतार मन्वन्तर और युग-भेद से हुए थे। इसीलिये आधुनिक काल के साधकगण जिन, शाकम्भरी आदि की अपने-अपने कुलदेवी रूप में अर्चना करते रहे हैं, वह संगत ही है।[३५]

इस प्रकार वही नित्या देवी जगत-परिपालन के लिये विभिन्न कालों में अवतार ग्रहण करती हैं। देवों को प्रदत्त उसी वचन के पालनार्थ विभिन्न अवतारों में आविर्भूत होकर वे शत्रुओं का विनाश करती हैं। ऋषि भी कहते हैं –

एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम्।।[३६]

कल्प-कल्प में असुरों का रूप परिवर्तित होता है।

इसीलिए देवी को भी विविध उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है। प्राचीन काल में दानवों का नाश करने के लिये उनका आविर्भाव हुआ था। दानवों का यह ताण्डव बहिर्जगत् के सदृश अन्तर्जगत् में भी चलता रहता है। स्वामी गम्भीरानन्द जी ने लिखा है, ''आस्तिक्यभाव, परलोक-चिन्तन, ध्याननिष्ठा आदि सद्गुणों को निर्मूल करने हेतु वर्तमान युग में अश्रद्धा, जड़वादप्रियता, भोगपरायणता आदि आसुरी दुर्गुणों ने जिस युद्ध की घोषणा की है तथा जिसके फलस्वरूप धर्मग्लानि, अधर्म की वृद्धि एवं ईर्ष्या, द्वेष, काम आदि की अधिकता से लोकक्षयकारी लड़ाई-झगड़ा हो रहा है, यही इस समय देवासुर-संग्राम है।[३७]

अन्तर्जगत् के इस देवासुर-संग्राम को शान्त करने के लिये आधुनिक काल में इसी आद्याशक्ति का श्रीमाँ सारदा देवी के रूप में पुन: प्राकट्य हुआ है।

जैसे अनादि-अनन्त ब्रह्म असीम है, वैसे ही अनन्त परमेश्वरी का वर्णन भी असीम है, उसे समाप्त करना असम्भव है। अतएव उस सर्वस्वरूपिणी देवी को हम श्रद्धासहित स्तुति-प्रणाम करते हैं –

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।

भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते।''[३८] ○○○

सन्दर्भ सूची – **१.** श्रीमाँ सारदा देवी - स्वामी गम्भीरानन्द उद्बोधन, २००८, पृ.२, **२.** श्रीश्रीचण्डी, सम्पादक - स्वामी जगदीश्वरानन्द, उद्बोधन ११/१४-५५, **३.** दुर्गासप्तशती, शान्तनवी टीका, हरिकृष्ण शर्मा संग्रहीत, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ. २५६, **४.** श्रीश्रीचण्डी, १/६५, **५.** देवीभागवतम् – पंचानन तर्करत्न सम्पादित, नवभारत पबल्शिर्स, कोलकाता, ५/१८/२२ **६.** श्रीमद्भागवतम्, १०/२/६, **७.** वही, १०/२/९, **८.** श्रीश्रीचण्डी, मूर्तिरहस्य, श्लोक १-३, **९.** ''एवं किल पुराणवार्ता-विन्ध्ये हि अति दृप्तयो: शुम्भनिशुम्भयो: पुरत: साकस्मादागता तामतिमनोहरयां दृष्ट्वा तौ मनसिजशर जर्जरितअंगौ प्रार्थयांचक्राते। युवयोर्मध्ये योऽतिबलवान् तमेव भजिष्यामीति तयोक्तौ परस्परसौहार्द्यं विहायान्योन्यं युद्धा मम्रतुरिति।'' (श्रीश्रीचण्डी, गोपाल चक्रवर्ती कृत तत्त्वप्रकाशिका टीका, पृ.४३६), **१०.** महाभारतम् विराटपर्व, हरिदास सिद्धान्तवागीश भट्टाचार्य प्रणीत् पंचम अध्याय, भारत भावदीप:, विश्ववाणी प्रकाशन, कोलकाता, पृ. ५७, **११.** देवीपुराणम् ३७/१२, **१२.** वामनपुराणम् ५४/२७, **१३.** श्रीश्रीचण्डी मूर्तिरहस्य, श्लोक ५-६, **१४.** वही, ११/४३, **१५.** वही, ११/४६, **१६.** देवीभागवतम् ७/२८/३३, **१७.** वही, ७/२८/४४, **१८.** श्रीश्रीचण्डी, ११/४४, **१९.** वही, ११/४८-४९, **२०.** श्रीश्रीचण्डी– रासमोहन चक्रवर्ती सम्पादित, ११ अध्याय, पृ. ४९६, **२१.** वही, **२२.** वही, **२३.** श्रीश्रीचण्डी, ११/४९-५०, **२४.** वही, २/२, **२५.** देवीभागवतम् ७/२८/७९, **२६.** स्कन्दपुराणम्, काशीखण्ड-उत्तरार्धम् ७२/७१, **२७.** देवीभागवतम्, ७/२८/६८-७०, **२८.** श्रीश्रीचण्डी, मूर्तिरहस्य, श्लोक १८-१९, **२९.** भ्रामरी तु भीमरथि काकिन्यो: संगमेऽनुगुंठाख्य क्षेत्रे तत: प्राच्यां, सन्नितिक्षेत्रे च चन्द्रला परमेश्वरीति नाम्ना प्रसिद्धा सैवास्माकं कुलदेवता।'' (गुप्तवती टीका, दुर्गासप्तशती सप्तटीका, हरिकृष्ण शर्मा सम्पादित, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ.२५६, **३०.** देवीभागवतम् १०/१३/५३-५४, **३१.** श्रीश्रीचण्डी, रासमोहन चक्रवर्ती सम्पादित, पृ. ५०३ दुर्गासप्तशती सप्तटीका, पृ. २५६, **३२.** देवीभागवतम् १०/१३/९९, **३३.** श्रीश्रीचण्डी, रासमोहन चक्रवर्ती सम्पादित, पृ.५०३, **३४.** श्रीश्रीचण्डी, मूर्तिरहस्य, श्लोक १९-२०, **३५.** दुर्गासप्तशती सप्तटीका, पृ. २५६, **३६.** श्रीश्रीचण्डी, १२/३६, **३७.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ.२, **३८.** श्रीश्रचण्डी, ११/२४.

भजन

हम पर कृपा बरसाओ माँ!

गोपेश द्विवेदी, बिलासपुर

तुम जननी अंतर्मन की, अब तो हृदय में बस जाओ माँ ।
तुमसे सेवा व्यक्त जगत की, इस जग में राह दिखाओ माँ ।।
तुम ही आदि, तुम अनन्त में, हर युग में तुम आओ माँ ।
तुम ज्योति अखिल लोक की, इस तम के पार ले जाओ माँ ।।
तुम देवी हो निर्मल मन की, अहम् भाव मिटाओ माँ ।
तुम वाणी में कथा मौन की, हर शब्द निशब्द में बस जाओ माँ।।
तुम आशा, तुमसे अभिलाषा,नव सृजन रूप में आओ माँ,
दिव्य धरा के हर कण की, दिव्य चेतना बन जाओ माँ ।
शक्ति तुम प्रभु रामकृष्ण की, हम पर कृपा बरसाओ माँ ।।

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३४)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जानेवाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

डॉ. निताईचरण हालदार

स्वामीजी के अमेरिका से लौट आने के कुछ माह पूर्व, निताई बाबू प्रतिदिन शाम को बड़ाबाजार से एक टोकरी खाने की अच्छी-अच्छी चीजें लेकर घोड़ेगाड़ी में मठ आते थे। निताई बाबू बड़ाबाजार अंचल के एक प्रसिद्ध होम्योपैथ डॉक्टर थे। वे बड़ाबाजार की बाँसतला गली के बाबू पूर्णचन्द्र सेठ के ससुर थे। जिन दिनों स्वामी ब्रह्मानन्द ठाकुर के पास बारम्बार आते-जाते थे, उन्हीं दिनों निताई बाबू को ठाकुर के पास देखकर वे उनके साथ विशेष रूप से परिचित हो गये थे।

जिन दिनों निताई बाबू ने मठ में आना आरम्भ किया, उन्हीं दिनों स्वामीजी के व्याख्यान अमेरिका में पुस्तिकाओं के रूप में मुद्रित होकर, प्राय: हर डाक से मठ में आते थे। निताई बाबू चार बजे के बाद मठ में आकर संध्या-आरती देखकर घर लौटते। उन्होंने ही सर्वप्रथम हमारे मठ को उपहार में एक हार्मोनियम दिया था। उन दिनों स्वामीजी की जितनी भी पुस्तक-पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई थीं, मैंने प्राय: उन सभी को पढ़ लिया था।

पूर्व काल में, स्वामीजी तर्क के रूप में ऐसी अनेक बातें कहा करते थे, जिन्हें सुनकर उन्हें आसानी से नहीं समझा जा सकता था। कभी वे नास्तिक, अज्ञेयवादी, सन्देहवादी, तो कभी आस्तिक, अद्वैतवादी, द्वैतवादी और कभी शून्यवादी बौद्ध, कभी 'नाहं नेदम्' मंत्र के साधक बन जाते; तो कभी वे कृष्णलीला के गोपीभाव में मतवाले हो जाते। बुद्धदेव की चर्चा करते समय हमारा आन्तरिक तथा बाह्य परिवेश, एक अत्यन्त गम्भीर प्रशान्त भाव से परिपूर्ण हो जाता। थोड़ी देर पूर्व, खोल-करताल के साथ संकीर्तन की ध्वनि मानो क्षण भर में ही विलुप्त हो जाती। स्वयं स्वामीजी ही हम लोगों को साथ लेकर 'नाहं नाहं, नेदं नेदम्' मंत्र का जप किया करते।

स्वामीजी जब जिस भी भाव या मत का समर्थन करते, तो किसी में भी उन्हें परास्त कर पाने की क्षमता नहीं होती। परन्तु बड़े आश्चर्य की बात यह है कि उनके व्याख्यान – सम्प्रदायों के संस्थापक आचार्यों के समान (उपनिषद, ब्रह्मसूत्र तथा गीता – इन) तीनों प्रस्थानों द्वारा अनुमोदित हुआ करते थे। यह सर्वविदित है कि आचार्य शंकर, रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्क तथा महाप्रभु चैतन्यदेव को भी, इन्हीं तीनों प्रस्थान-ग्रन्थों के आधार पर अपने अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, अचिन्त्य-भेदाभेद आदि मतवादों की स्थापना करनी पड़ी थी।

स्वामीजी के व्याख्यानों में, वेद आदि शास्त्रों के कालनिर्णय के विषय में पाश्चात्य विद्वानों के विभिन्न मतों की पूरी तौर से उपेक्षा की गयी थी।

अमेरिका के एक व्याख्यान में एक जगह उन्होंने कहा था, 'मनुष्य योनि के बाद (जीव की) क्रमोन्नति ही होती है; पशु आदि योनियों में जन्म नहीं होता।' यह पढ़कर मेरे मन में एक बड़ा खटका लग गया। मैंने सोचा, "इतने दिनों बाद स्वामीजी के मुख से ऐसी अशास्त्रीय बात कैसे निकली?" स्वामीजी की यह उक्ति श्रुतिविरुद्ध होने के प्रमाण-स्वरूप मैंने रामकृष्णानन्द को छान्दोग्य उपनिषद् का यह मंत्र दिखाया –

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा; अथ य इह कपूयचरणा, अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डाल योनिं वा।। (५/१०/७)

अर्थात् "उनमें (चन्द्रमण्डल से लौटे हुए जीवों में) से जिन लोगों ने इहलोक में उत्तम कर्मों का अनुष्ठान किया है, वे निश्चित रूप से अविलम्ब ब्राह्मण-योनि या क्षत्रिय-योनि या वैश्य-योनि के रूप में उत्कृष्ट जन्म प्राप्त करेंगे और जिन लोगों ने इस लोक में दुष्कर्म किये हैं, वे कुत्ते, सूअर या चाण्डाल-योनि के रूप में निकृष्ट जन्म प्राप्त करेंगे।"

इसे देखते ही उन्होंने मेरे हाथ से वह पुस्तक छीन ली और बोले कि इस विषय में मैं किसी के भी साथ कोई चर्चा न करूँ।

इसके कुछ दिनों बाद ही मैंने स्वामीजी की एक अन्य पुस्तिका में पढ़ा, 'जीव की ऊपर की ओर तथा नीचे की ओर, दोनों ही तरह की गतियाँ होती हैं।' यह मुझे एक विरोधाभास-जैसा प्रतीत हुआ। मैंने सोचा कि स्वामीजी तो शीघ्र ही आनेवाले हैं, उनके आते ही समाधान हो जाएगा। यही सोचकर मैंने इस विषय में आगे कोई ऊहापोह नहीं किया।

तभी समाचार मिला कि स्वामीजी श्रीलंका में आ गये हैं। उन्हें साथ लाने हेतु स्वामी शिवानन्द तथा स्वामी निरंजनानन्द ने सिंहल की यात्रा की।

स्वामीजी के अमेरिका से लौटने के पूर्व तक मठ के अनेक लोग 'कौपीनवन्त: खलु भाग्यवन्त:' के रूप में ही निवास करते थे। बाहर से किसी अपरिचित व्यक्ति के आने पर वे लोग कमर में कोई वस्त्र लपेट लेते। स्त्रियों में एकमात्र वृद्धा गोपाल-की-माँ ही आया करती थीं।

तारकेश्वर में

मैंने सोचा कि यदि तारकेश्वर के महन्त अपने सारे साज-सरंजाम के साथ स्वामीजी के स्वागत-समारोह में उपस्थित हों, तो बड़ा ही सुन्दर रहेगा। क्योंकि कलकत्ते के निकट हमारे (दसनामी) सम्प्रदाय से सम्बद्ध बाबा तारकेश्वर के सेवायत महन्त के समान सम्पत्तिशाली दूसरा कोई भी नहीं था। नवीन-एलोकेशी के मामले में नामजद महन्त माधव गिरि के विषय में ठाकुर कहते, ''उनमें थोड़ा-सा शिव का अंश विद्यमान है, परन्तु होनी को कौन खण्डित कर सकता है?'' हम लोगों ने उन्हें देखा है। वे अपने पीछे दो शिष्य छोड़ गये थे – सतीश गिरि और हेम गिरि। गद्दी को लेकर दोनों गुरुभाइयों के बीच मुकदमा चल रहा था। हेम गिरि उन दिनों कलकत्ते में थे और सतीश गिरि तारकेश्वर में।

ट्रेन से तारकेश्वर पहुँचते ही मैं तत्काल महन्त सतीश गिरि के पास गया। उन दिनों वैदिक प्रबन्धों तथा ग्रन्थों के रचयिता श्रीयुत उमेशचन्द्र बटवाल 'स्टैटुटरी सिविलियन' के रूप में वहीं उपस्थित थे।

महन्त सतीश गिरि को स्वामीजी के सत्कार-समारोह में अग्रणी होने को कहने पर उन्होंने स्वामीजी को कायस्थ-संन्यासी कहकर अपनी असहमति जताई। जाति का प्रसंग उठाकर स्वामीजी के प्रति असम्मान प्रकट करने पर मैंने सूचित किया कि रामेश्वर से लेकर समग्र दक्षिणी अंचल के रामानुजी श्री-सम्प्रदाय से सम्बद्ध सभी प्रमुख वैष्णव, शैवगण और शृंगेरी मठ के श्रीशंकराचार्य आदि ने स्वामीजी का अकल्पनीय अभिनन्दन किया है और रामेश्वर के प्रतिनिधि तथा सेवायत रामनाद के राजा ने स्वयं ही उनकी गाड़ी को खींचकर उनके प्रति अभूतपूर्व सम्मान प्रदर्शित किया है। इन बातों के साथ ही मैंने सतीश गिरि को बहुत-सी तिरस्कारसूचक बातें भी सुना दी। आखिरकार मैंने स्पष्ट शब्दों में कहा, ''बड़े दुर्भाग्य की बात है कि आप एक ऐसे लोकोत्तर पुरुष के स्वागत में भाग लेने का सुअवसर खो रहे हैं।'' उस समय मैं विशुद्ध हिन्दी भाषा में बोल रहा था। बटवाल महाशय बड़े मनोयोग के साथ हमारी बातचीत सुन रहे थे।

अब वहाँ व्यर्थ समय न गँवाकर मैं बाबा के मन्दिर में गया। बाबा का दर्शन करने के बाद मैं मन्दिर में ही खड़ा था कि उसी समय महन्त के एक चपरासी ने आकर कहा कि महन्त महाराज आपको बुला रहे हैं। मैंने सोचा कि कदाचित् मुझे उनके पास से अपमानित होकर लौटना पड़ेगा। यदि न जाऊँ, तो अपमान की मात्रा बढ़ सकती है, यही सोचकर मैं चपरासी के साथ गया।

वहाँ पहुँचते ही महन्तजी ने विनम्रतापूर्वक क्षमा माँगते हुए कहा कि मुकदमे की व्यस्तता के कारण उनके लिये कलकत्ते जाना सम्भव नहीं हो सकेगा। इसके बाद उन्होंने हठपूर्वक मुझे भोजन कराया।

बचपन से ही तारकेश्वर के आगे सिंगूर में स्थित 'डकैतों की काली' के विषय में सुना करता था । उन्हें और मलेरिया से हुगली जिले के गाँवों की जो भयानक दुर्दशा हो रही थी, उसे भी देखने हेतु मेरी वहाँ से पैदल ही लौटने की इच्छा हुई। मार्ग में, एक रात से अधिक मैं किसी भी गाँव में नहीं ठहरा। हर गाँव जंगली झाड़-झंखाड़ों से भरा हुआ था। मलेरिया से उस अंचल की कैसी दुर्दशा हुई है, यह भलीभाँति समझ गया। हर गाँव में कुछ तालाब तथा पोखर थे, परन्तु सभी को शैवाल आदि खर-पतवार से भरा हुआ देखा। देखा कि लोग बुखार का कष्ट भोगते हुए भी कमर में चादर बाँधे हुए दूसरे गाँव में दही-चिउड़ा का फलाहार खाने जा रहे हैं। सभी के पेटों पर, प्लीहा को दागने के गोल-गोल तीन-चार दाग थे। उनके पेट इतने अस्वाभाविक रूप से बड़े थे कि देखकर लग रहा था मानो केवल पेट-मात्र ही चला जा रहा है। पेट को देखकर सहज ही समझा जा सकता

था कि उनकी प्लीहा कितनी बड़ी है। परन्तु वे लोग बोले, ''यह प्लीहा भी कम नहीं होगा, बुखार भी नहीं उतरेगा, तो बताइये उस दही-चिउड़े के फलाहार को छोड़कर हम लोग भला कितने दिन रहेंगे?''

कलकत्ते के समीपवर्ती हुगली जिले के ग्रामांचल की यह शोचनीय दशा देखकर और तथाकथित स्वदेश-हितैषियों की जड़ता के बारे में सोचकर मेरे मन में असीम क्षोभ तथा पीड़ा हुई। किसी राष्ट्रीय अभ्युदय-युग की प्रबुद्ध मानव-जाति के बीच, देश की ऐसी दुर्दशा नहीं हो सकती। किसी अपरिहार्य कारणवश वैसा हुआ, तो भी शीघ्र ही उसका निवारण हो जाता है।

मार्ग में मैंने जितने भी गाँव देखे, उनमें से प्राय: सभी मलेरिया के प्रकोप से उजड़ चुके थे। जाड़े के दिन थे। रास्ते में चलते-चलते मैं देखता – किसान लोग खजूर के रस को उबालकर गुड़ बना रहे हैं। कोई-कोई मुझे बुलाकर उसमें से 'तातरसी' (खजूर का गरम रस) पिला देता। जीवन में 'तातरसी' पीने का मेरा वही पहला और अन्तिम अनुभव था।

रास्ता चलते-चलते एक दिन संध्या के समय ठीक रास्ते पर सिंगूर की 'डकैतों की काली' के मन्दिर के निकट पहुँच गया। 'डकैतों की काली' के रूप में मैंने माँ की जैसे भयंकर विकट मूर्ति की कल्पना की थी, वैसा कुछ भी देखने को नहीं मिला। विशेषता केवल इतनी ही थी कि माँ की प्रतिमा बहुत बड़ी है और वे पश्चिम की ओर मुख किये खड़ी हैं। वहाँ एक पुराने मन्दिर के सिवाय कोई घर-बार नहीं थे। मन्दिर के बाहरी बरामदे में बैठकर मुझे बहुत-सी पुरानी बातें याद आने लगीं। मन्दिर की वैसी अवस्था देखकर स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि सारे डकैत वहीं आकर एकत्र हुआ करते थे। ये डकैत लोग नरबलि देकर माँ की उपासना करते थे, इसीलिये माँ के लिये रसोईघर आदि की कोई जरूरत नहीं थी।

इसी मार्ग पर डकैतों के द्वारा तारकेश्वर के सैकड़ों यात्रियों के मारे जाने की लोमहर्षक घटनाएँ और इसके साथ ही कलकत्ते के विख्यात 'काना सार्जेंट' द्वारा अद्भुत कुशलता के साथ दल-के-दल डकैतों को पकड़कर उनका चालान करके पथिकों का भय दूर करना, सब कुछ याद आने लगा। सन्ध्या हो जाने पर मैंने सिंगूर ग्राम के ही एक सज्जन के घर में रात्रिवास किया।

त्रिवेणी पहुँचकर सुविख्यात पण्डित जगन्नाथ तर्क-पंचानन का भद्रासन देखने की बड़ी इच्छा हुई। मकान में प्रवेश करने पर एक अत्यन्त जीर्ण पुराना पूजा का दालान और पश्चिम की ओर एक दुमंजला कोठा देखने को मिला। उस कोठे के बरामदे में बैठकर उनके प्रपौत्र अपने शरीर पर तेल मल रहे थे। मेरे मुख से सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने मुझे मकान के बाहरी बरामदे का वह स्थान दिखाया, जहाँ बैठकर सर विलियम जोन्स पण्डित महाशय से संस्कृत सीखा करते थे।

उस जीर्ण-शीर्ण मकान को देखकर मैं यह भलीभाँति समझ गया कि पण्डित महाशय पहले विशेष सम्पन्न थे। पण्डित महाशय का वह भद्रासन मुझे बंगाल का एक तीर्थ प्रतीत हुआ। श्रद्धापूर्वक उस स्थान की धूलि को उठाकर अपने मस्तक पर धारण करने के बाद मैंने वहाँ से विदा ली। **(क्रमश:)**

भजन

जागो माँ! कुल कुण्डलिनी

गोपाल भारतीय

जागो माँ ! कुल कुण्डलिनी जागो ।
हे मूलाधारवासिनी देवी, अब जड़ता को त्यागो।।
ब्रह्मशक्ति प्रपंचनियंत्रिका, विश्वमोहिनी माया ।
तुम जागो तो यह जग जागे, सोयी तो भरमाया।।
जय त्रिपुरा, त्रिगुणा, त्रिमात्रिका, त्रिपदा जग-विख्याता ।
आदिशक्ति जग-जननी भवानी, सर्वशक्तिमयि माता ।।
साढ़े तीन कुण्डलाकारा, ब्रह्म अग्नि जय काली ।
सुप्त सर्पिणी ब्रह्मलोक को, चल-चल हे मतवाली ।।
'भू:' को तज कर चलो 'भुव:' में, करो वहाँ विश्रामा।
'स्व:' को छेड़ो-छोड़ो माता, जगे नाद अविरामा ।।
तोड़ कपाट अनाहत का माँ ! 'मह:' लोक' अपनाओ।
जड़ता-पशुता छुटे जीव की, 'जन: लोक' पहुँचाओ ।।
'तप: लोक' में आओ देवी, आज्ञा चक्र जगाओ।
'सत्य लोक' सहस्त्रार परमपद, ब्रह्म मिलन करवाओ।।
सुर-नर-मुनि निशिवासर सेवित, ब्रह्मानन्द प्रदाता ।
'भारतीय' लघु किंकर सुत को, भूल न जाना माता ।।

नोट - यह बंगाली भजन का अनुवाद है, जिसे स्वामी विवेकानन्द जी रामकृष्ण परमहंस जी को गाकर सुनाते थे ।

हमारा पौराणिक साहित्य

डॉ. सुरेशचन्द्र शर्मा, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)

(गतांक का शेष भाग)

पुराणों में विकासवादी अवधारणा – एक योनि से दूसरी योनि में विकास की डार्विन प्रतिपादित आधुनिक विचारधारा के लिए पौराणिक विचारधारा में कोई स्थान नहीं है। परन्तु प्रकृति से २४ तत्त्वों के प्राकट्य में विकास की अवधारणा लागू होती है, जो इस प्रकार है - प्रकृति से महत् तत्त्व, महत् तत्त्व से अहंकार - सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक, इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता, सात्त्विक अहंकार से अन्त:करण (मन), राजसिक अहंकार से कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ एवं तामसिक अहंकार से पंच तन्मात्राएँ एवं पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। महाभूतों के अतिरिक्त पूर्व की सभी श्रेणियाँ प्रकृति से उत्पन्न होते हुए भी वे सभी मनोवैज्ञानिक स्तर की हैं। आधुनिक जड़वादी विचारधारा के विपरीत पंचभूतों के रूप में पदार्थ की उत्पत्ति सूक्ष्म तामसिक अहंकार से होती है। जब ये सभी चौबीस तत्त्व मिलकर शरीर और जगत की उत्पत्ति नहीं कर सके, तो उसमें भगवान् नारायण प्रविष्ट हुए एवं ब्रह्माण्ड या हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हुई, जिसे पुराणों में ब्रह्मा कहा गया है। फिर ब्रह्माजी ने काल एवं प्रसुप्त संस्कारों को जागृत कर ब्रह्माण्ड के विविध लोकों तथा प्राणियों की विविध योनियों को उत्पन्न किया। इन योनियों के प्रकार पृथ्वी पर पाई जानेवाली योनियों (Species) तक ही सीमित नहीं है। इनके अतिरिक्त देव, दानव, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, चारण, किन्नर आदि अनेक योनियाँ भी हैं, जो भागवत पुराण में बार-बार आती हैं। अत: विकास की आधुनिक अवधारणा पुराणों में वर्णित सर्ग में ही लागू होती है, जो सृष्टि-निर्माण के पूर्व की स्थिति है, ब्रह्माजी द्वारा सृष्टि के निर्माण में जिसे विसर्ग कहा गया है, लागू नहीं होती। आधुनिक विकासवादी की एक योनि से दूसरी योनि में विकास की अवधारणा पौराणिक विकास में ग्राह्य नहीं है। योनियाँ तो पहले से ही विकसित हैं। हाँ, जीव (मनुष्य), यदि चाहे तो अपने प्रयास से निम्न योनि से उच्च योनि में विकसित हो सकता है। यहाँ ध्यान रखने योग्य तथ्य यह है कि आधुनिक विकास की अवधारणा के अनुसार एक योनि ही दूसरी योनि में रूपान्तरित होती है, जबकि पुराणों के अनुसार ये योनियाँ पूर्व से ही अस्तित्व में हैं, जो अपने कर्मों के अनुसार पुनर्जन्म की प्रक्रिया से आवागमन के चक्र में आती रहती हैं, जब तक उनका मोक्ष या उद्धार नहीं हो जाता।

इस उद्धार या मोक्ष को ही विकास की उच्चतम अवस्था कहा जाता है। परन्तु ब्रह्माण्ड का विकास नहीं होता। यह तो सृष्टि और प्रलय की अनादि प्रक्रिया से अनन्त काल तक चलता रहता है।

पौराणिक ब्रह्माण्ड की अवधारणा – ब्रह्माण्ड की पौराणिक रचना की अवधारणा आधुनिक विकास की जीवन उत्पत्ति की धारणा से सर्वथा भिन्न और विरोधी है। आधुनिक भौतिक विज्ञान की जगत-उत्पत्ति की अवधारणा यह है कि अन्तरिक्ष में अनेक तारापुंज या आकाश-गंगायें तैरती रहती हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म यंत्रों से ही देखी जा सकती हैं। अन्तरिक्ष में पृथ्वी के अतिरिक्त कहीं भी चेतना नहीं है। परन्तु पुराणों में चौदह लोकों का वर्णन है, जिनमें सात लोक नीचे के हैं तथा सात उच्च लोक हैं। नीचे के ये लोक हैं – अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, एवं पाताल। भूलोक, भुवलोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक एवं सत्यलोक उच्च और सूक्ष्म लोक हैं। प्रत्येक लोक में अपने आप में आध्यात्मिक विकास के अनुसार अनेक अन्य प्राणी रहते हैं। इनके विवरण में एवं उनके होने की कल्पना आधुनिक दृष्टिकोण से प्रभावित व्यक्ति का भ्रमित होना स्वाभाविक ही है। यह भ्रम तब और भी अधिक हो जाता है, जब पृथ्वी लोक के प्राणी भी अपने रथों पर आरूढ़ होकर उन लोकों में जाते हैं तथा अन्य देवों एवं असुरों से युद्ध करते हैं। इस भ्रम को यदि हटा दिया जाय, तो पौराणिक सृष्टि की कल्पना, आधुनिक भौतिकवाद की इस मान्यता को खण्डित कर देती है कि चेतना पृथ्वी के अतिरिक्त कहीं नहीं है। पौराणिकों का कहना है कि यह भ्रम इसलिये होता है, क्योंकि हम ब्रह्माण्ड का अस्तित्व इन्द्रियग्राह्य जगत तक ही सीमित कर देते हैं।

दोनों दृष्टियों में समन्वय की संभावनायें – अब प्रश्न खड़ा होता है कि इन परस्पर विरोधी अवधारणाओं में क्या

किसी प्रकार का समन्वय सम्भव है? इसका उत्तर यह है कि यदि चेतना के विविध आयाम तथा स्पन्दन स्वीकार कर लिए जायँ, तो इन परस्पर विरोधी अवधारणाओं का समन्वय किया जा सकता है। ब्रह्माण्ड के आधुनिक दृष्टिकोण को यदि केवल पृथ्वी तक ही सीमित कर दिया जाये, तो यह कहा जा सकता है कि भौतिक विज्ञान को अभी भी उन लोकों का ज्ञान नहीं है, जो चेतना के अन्य स्तरों, आयामों एवं स्पन्दनों पर स्थित हैं। तभी यह समन्वय संभव है। इसके अतिरिक्त अतीन्द्रिय शक्तियों (Occultism) की अवधारणा भी इस समन्वय में हमारे लिए सहायक सिद्ध हो सकती है। यदि अलौकिक एवं रहस्यमय विद्याओं के सत्य को स्वीकार लिया जाए, तो यह सम्भव है कि इन विद्याओं से युक्त होकर ही इन लोकों को देखा जा सकता है, अन्यथा नहीं।

परन्तु एक लोक से दूसरे लोक में रथारूढ़ होकर जाना और फिर एक निश्चित अवधि में लौट आने को समझ पाना सम्भव नहीं है। आज की स्थिति में एक बुद्धिजीवी को यही कहा जा सकता है कि सम्भवत: जन सामान्य को समझाने का यह एक प्रणाली भर है। इसी प्रकार पौराणिक रेखागणित तथा नक्षत्र विज्ञान भी आधुनिक मन के लिए समझ से परे है।

इस प्रकार का एक पेचीदा वर्णन हमें पंचम स्कन्ध में प्राप्त होता है, जहाँ पृथ्वी का वर्णन एक गोलाकार रूप में किया गया है, जिसमें अनेक द्वीप हैं, जो भिन्न-भिन्न पदार्थों के समुद्रों से घिरे हुए हैं। उसके बाद सूर्य, ध्रुव लोक आदि का वर्णन है, जिसमें कुछ प्रतीकात्मक भी हैं। पूर्ण विवरण प्रस्तुत करने के पश्चात् भक्त से आग्रह किया जाता है, "राजन्! यह सर्वदेवमय भगवान् विष्णु का सर्वदेवमय स्वरूप है, इसका नित्य सायंकाल पवित्र और मौन होकर दर्शन करते हुए चिन्तन करना चाहिए तथा भगवान् की स्तुति करनी चाहिए। सम्पूर्ण ज्योतिर्गणों के आश्रयस्वरूप सर्वदेवाधिपति परमपुरुष परमात्मा का हम विनम्रतापूर्वक ध्यान करते हैं।" (भागवत, ५.२३.८)। इस एक ही उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार के वर्णन उपासक के लिए ध्यान में सहायता करने हेतु रूपक मात्र हैं। ऐसा ही अन्यत्र समझा जाना चाहिए।

अत: पुराणों का उद्देश्य हम सभी को भूगोल या खगोल समझाना नहीं, अपितु प्रकृति का ऐसा विवरण प्रदान करना है, जो ईश्वरीय चेतना से ओत-प्रोत है, ताकि उपासक अपने जीवन को भागवत चेतना तक उठा सके। इसी के लिये प्रतिमा पूजा, यन्त्रों, मन्त्रों, मुद्राओं, त्रिकोण, वृत्तों का निर्माण किया गया है। विग्रह रूप के दर्शन का उद्देश्य ही यही है कि मानव मन को स्थूल से सूक्ष्म तत्त्व की ओर ले जाया जाय, जो ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, एवं ब्रह्माण्ड भी उसी का स्थूल रूप है।

पुराणों की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में – पौराणिक विवरण के सम्बन्ध में एक अन्य कठिनाई जो आधुनिक मन अनुभव करता है, वह है – 'पुराणों की ऐतिहासिक सत्यता'। पुराणों में वर्णित देव एवं उनसे सम्बन्धित वर्णन क्या सच हैं? ईश्वरावतारों के जीवन वृत्तान्त एवं उनके कार्य सच हैं या कपोल कल्पित किम्वदन्तियाँ मात्र हैं। जब तक आधुनिक शिक्षा का प्रभाव नहीं था, तब तक कोई समस्या नहीं थी, परन्तु अब यह शिक्षा धार्मिक विचारों की स्वीकृति में बाधक बन गई है। यदि पौराणिक दृष्टि को भलीभाँति समझ लिया जाय, तो समस्या स्वत: ही समाप्त हो जाती है। परन्तु उसके बिना भी घटना, इतिहास, कथा तथा आध्यात्मिक अनूभूतियों को अपने-अपने स्थान पर सही-सही समझ लेने पर भी समस्या का समाधान हो जाता है। कोई भी इतिहासवेत्ता कहेगा कि अतीत की किसी भी घटी हुई घटना के आलेख को इतिहास कहते हैं। घटना घटते ही वह समाप्त भी हो जाती है। वह स्मृति में तभी रहती है जबकि वह परिवेश को प्रभावित करती है, समसामयिक लोगों के द्वारा लिख दी जाती है तथा जनमानस की स्मृति में स्थायी हो जाती है। घटना के रूप में कोई भी इतिहास उसी प्रकार निस्सार है, जिस प्रकार पानी पर खींची हुई लकीर। परन्तु श्रुति परम्परा के रूप में स्थायी होकर वह उन्हीं के विचारों और कार्यों को प्रेरित एवं उद्दीप्त करती है। इतिहास में कुछ घटनायें ऐसी होती हैं, जो देश और काल की सीमाओं में होते हुए भी मानव की आध्यात्मिक शक्तियों एवं अभीप्साओं को जाग्रत कर देती हैं तथा जगत के आध्यात्मिक अधिष्ठाता परमात्मा के सान्निध्य से स्थायी एवं जीवन्त हो जाती हैं। ऐसा होने पर वे कथाओं का रूप धारण कर लेती हैं। इसलिए नहीं कि वे ऐतिहासिक घटनायें हैं, अपितु समय के सर्जनात्मक व्यक्तियों जैसे, कवि कलाकार, दार्शनिक, साहित्यकार एवं नीतिवान पुरुषों की अनुभूतियों से युक्त होकर अन्तरात्मा की शक्ति से युक्त होकर आध्यात्मिक अनुभूतियों एवं चिर शाश्वत मूल्यों का रूप ले लेती हैं। अत: इतिहास को भी

आध्यात्मिक रूप धारण करने के पूर्व पौराणिक गाथाओं का रूप लेना होगा। प्राकृतिक भौतिक शक्तियाँ, जैसे भूमि, जलवायु आदि का रूप लेकर एक सभ्यता को जन्म देती हैं, उसी प्रकार दिव्य शक्तियाँ अवतारों, विभूतियों तथा उनके दिव्य लीलाओं में रूपान्तरित हो जाती हैं। यही कारण है कि इन अवतारी कार्यों को ईश्वर की लीलाएँ कहा जाता है। अभी हाल में कुछ प्रयास किये गये हैं कि ईसा मसीह एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं तथा हिन्दू पुराणों की कथाएँ कपोल-कल्पित किम्वदन्तियाँ होने के कारण निरर्थक हैं। हिन्दू पुराणों का कोई ऐतिहासिक प्रमाण न होने के कारण वे निरर्थक हैं। ये सभी कथा-कहानियाँ बे-सिर-पैर की बातें अथवा केवल कवि-कल्पनाएँ हैं। इस प्रकार का प्रयास ईसाई धर्म और सनातन हिन्दू धर्म के कुछ विद्वानों की नासमझी के कारण किया गया है।

ईसा एक बढ़ई के पुत्र थे तथा उन्हें सूली पर चढ़ा दिया गया, इस ऐतिहासिक घटना का कोई महत्त्व नहीं है। घटना घटी और समाप्त हो गई। जीवन में इस घटना का महत्त्व इस बात में है कि वे एक ईश्वर भक्त थे। इसी प्रकार भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण के ऐतिहासिक प्रमाणों के बावजूद उनका आध्यात्मिक महत्त्व इसी बात में है कि वे भगवान् के अवतार थे तथा भक्तों की रक्षा के लिए अवतरित हुए थे। यह आस्था इतिहास से परे एक आध्यात्मिक सत्य के रूप में प्रतिष्ठित है। भगवान् श्रीकृष्ण की वाणी 'जो मुझे जैसे भजते हैं, मैं भी उन्हें वैसे ही स्वीकार करता हूँ। यही है वह आध्यात्मिक सत्य, जो धर्म का सुदृढ़ आधार है। ध्यान रहे कि आध्यात्मिक सत्य ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नहीं है। वह चिर शाश्वत है तथा ऐतिहासिक घटनाएँ उनकी छाया मात्र हैं। वस्तुत: पुराणों का अध्ययन न तो मात्र ऐतिहासिक दृष्टि से किया जाना चाहिए और न उन्हें कपोल-कल्पित गाथाएँ समझना उचित होगा। जो कथावाचक पंडित, पुराणों के आध्यात्मिक रूप की अवहेलना करते हुए केवल इतिहास के महापुरुष के रूप में प्रस्तुत करते हैं, वे भी उतने ही समाज विध्वंसक हैं, जितने पुराणों को कपोल कल्पनाएँ माननेवाले आधुनिक आलोचक। इतिहास और कल्पनाओं की तुलना में भाव-जीवन (Spiritual life) बहुत ऊपर है। इसीलिए कहा गया है – **भावग्राही जनार्दनः**। जो भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, देव-देवियों - विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश आदि को सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, साकार और निराकार दोनों रूपों में स्वीकार करते हुए उनकी आराधना करते हैं, वे उन्हें ऐतिहासिकता के कठघरे से उठाकर नित्य स्थिति में ले जाते हैं तथा इस प्रकार उनके सभी कार्य-कलाप भगवान् की नित्यलीला का रूप धारण कर लेते हैं। ये लीलाएँ भक्तों को इन्द्रियातीत धरातल की ओर ले जाती हैं। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि पुराणों में वर्णित कथाओं को भगवान् की दिव्य लीलाओं के रूप में सुनना और पढ़ना चाहिए, जो श्रोता-वक्ता और पाठकों को पवित्र करनेवाली हैं। उनके नाम, रूप, लीला और धाम नित्य होते हैं तथा कालक्रम से धराधाम पर भी प्रकट होते हैं। भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, परशुराम, नृसिंह सभी शाश्वत हैं। वे इतिहास से परे आध्यात्मिक भावलोक के सत्य हैं। जब इन कथाओं और लीलाओं का गायन श्रद्धा और भक्तियुक्त चित्त से किया जाता है, तो वह जीवन और व्यक्तित्व को रूपान्तरित कर देता है। विश्व, पौराणिक साहित्य का सदैव ऋणी रहेगा, जिसने देश कालातीत परब्रह्म परमात्मा को दैनन्दिन जीवन का सत्य बना दिया है।

इतिहास से पुराण की ओर – इस सम्बन्ध में आधुनिक विचारकों के निम्नलिखित उद्धरण हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''पहले अपने पुराण और शास्त्रों को अच्छी तरह पढ़ो। पुराणों ने वेदान्त के छिपे हुए तत्त्वों को प्रकाश में लाकर अवतरित महान् चरित्रों का वर्णन करते हुए इन तत्त्वों की विस्तृत व्याख्या की है। उनका प्रयत्न कथाओं का चित्र प्रस्तुत करने की अपेक्षा उसके भाव-तत्त्व का विश्लेषण करना था। उन्होंने स्पष्ट किया कि उनका धर्म सभी प्रयत्नों और अभीप्साओं को मानवता की पूर्णता पर आधारित करता है। मनुष्य का विकास उसका मूल पूर्णता की ओर लौटना है। यह पूर्णत्व पवित्रता और प्रेम की साधना से ही आ सकता है।'' श्रीअरविन्द के कथनानुसार – ''आधुनिक युग में जबसे पश्चिमी युक्तिवाद से रंगे हुए अर्वाचीन विचारों का प्रवेश हुआ है तथा नये आवेगों के अधीन होकर बुद्धि फिर से प्राचीन संस्कृति के अधिक आरंभिक मूलभूत विचारों की ओर मुड़ गयी है, पुराणों की बहुत बदनामी और निन्दा की गयी है। परन्तु इस निन्दा का अधिकांश कारण मध्ययुगीन धार्मिक ग्रन्थों के प्रयोजन, उनकी रचना-पद्धति एवं उनके आशय को सर्वथा गलत रूप में समझना ही है। भारत की धर्म-सम्बन्धी कल्पना की दिशा को तथा उसकी संस्कृति के विकास में इन ग्रन्थों

के स्थान को समझ लेने पर ही हम पुराणों के आशय को हृदयंगम कर सकते हैं।''

प्रभुपाद वेदान्त स्वामी कहते हैं – ''भौतिक विज्ञान ने सृष्टि के परम स्रोत की खोज के लिए जो प्रयास किये हैं, वे अपर्याप्त हैं, किन्तु तथ्य यही है कि जो भी अस्तित्व में है, उस प्रत्येक वस्तु का एक परम स्रोत है। इस परम स्रोत की व्याख्या श्रीमद्भागवत में तर्कयुक्त एवं प्रामाणिक रूप से की गई है। श्रीमद्भागवत न केवल प्रत्येक वस्तु के परम स्रोत को जानने के लिए दिव्य विज्ञान है, अपितु ईश्वर से अपने सम्बन्ध को जानने और इस पूर्ण ज्ञान के आधार पर मानव समाज की पूर्णता के प्रति अपने कर्तव्य को पहचानने का दिव्य विज्ञान भी है।'' भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री पं जवाहरलाल नेहरू ने कहा था – ''यदि मुझसे पूछा जाय कि भारत की महानतम तथा श्रेष्ठतम धरोहर क्या है, तो मैं नि:संकोच होकर कहूँगा कि वह संस्कृत भाषा तथा उसका सांस्कृतिक वैभव है।'' पाण्डुरंग शास्त्री आठवले के पुराण-सम्बन्धी विचार हैं – ''पुराण-ग्रन्थ संस्कारों के लिए लिखे गये हैं। पुराणों को पढ़ने पर वैसे गुणों को आत्मसात करने की इच्छा होती है। पुराणों को सुनने पर मैं भी वैसा बनूँ, ऐसा लगने लगता है। पुराणों में भी सबसे अलौकिक ग्रन्थ भागवत पुराण है। भागवत ग्रन्थ नारायण पर है। जीवन नारायण पर होना चाहिए, परन्तु वह लाचारी से नहीं, अपितु भाव अथवा सम्बन्ध से आनी चाहिए, जिसकी पंक्ति-पंक्ति में नारायणपरता है, जिसे वेदव्यास ने लिखा है, वह ग्रन्थ है – श्रीमद्भागवत।''

पुराणों के इस आध्यात्मिक उद्देश्य को भागवत पुराण के इन शब्दों में निरूपित किया गया है – ''परीक्षित! संसार में बड़े-बड़े प्रतापी और महान् पुरुष हुए हैं। वे लोकों में अपना यश विस्तार करके यहाँ से चल बसे। मैंने तुम्हें ज्ञान और वैराग्य का उपदेश देने के लिए ही उनकी कथा सुनाई है। यह सब वाणी का विलास है। इसमें पारमार्थिक सत्य कुछ भी नहीं है। उत्तम श्लोक भगवान् श्रीकृष्ण का गुणानुवाद समस्त अमंगलों का नाशक है। बड़े-बड़े महात्मा उसी का गान करते रहते हैं, जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में अनन्य प्रेममयी अभीप्सा की अपेक्षा रखता हो, उसे नित्य निरन्तर भगवान् के दिव्य गुणानुवाद का ही श्रवण करते रहना चाहिए।'' (१२.३.१४-१५)

यहाँ नित्य और अभीप्सा शब्द महत्त्वपूर्ण है। अभीप्सा का अर्थ है – चाहना। नित्य वस्तु है – भगवान् की चाह। भागवत की कथाओं का प्रयोजन अप्रत्यक्ष रूप से इतिहास की नि:स्सारता बतलाने में है। श्रीमद्भागवत के ये शब्द भागवती कथा के श्रवण में ऐतिहासिक एवं पौराणिक दृष्टि के अन्तर को स्पष्ट कर देते हैं। इतिहास और पुराण का यह विवेचन केवल आधुनिक दृष्टि से युक्त उन लोगों के लिए लिखा गया है, जो भागवत महापुराण के प्रति पुराण होने के कारण हेय दृष्टि रखते हैं। भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्ण के जीवन और कार्यों की प्रस्तुति को मात्र ऐतिहासिकता तक सीमित नहीं रखा गया है। क्योंकि ऐतिहासिक महापुरुषों की कीर्ति अस्थायी होती है, जबकि पुराण पुरुष श्रीराम और श्रीकृष्ण जैसे अवतारी पुरुषों की मंगलमयी कीर्ति शाश्वत है। उनके चरित्र नामों तथा गुणों का कीर्तन करने से मानव उच्च आध्यात्मिक भावभूमि पर उठ जाता है और यही भागवत पुराण का उद्देश्य भी है।

थोड़ा-सा भी विचार करने से स्पष्ट हो जाएगा कि भगवान् व्यासदेव जैसे सर्वशास्त्रविशारद महामुनि के जीवन में असंतोष का कारण ही यह था कि वासुदेव कृष्ण के जीवनचरित्र की प्रस्तुति ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत में प्रस्तुत करने के पश्चात् भी उन्हें शान्ति के अभाव का अनुभव हो रहा था। इसका कारण इतिहासदृष्टि ही है। जिसका ह्रास हो वही इतिहास कहलाता है, जो मनुष्य को शान्ति के स्थान पर अशान्ति ही देता है। भगवान् कृष्ण और इनके अन्य अवतारों को इतिहास की वस्तु मान लेने से वे अन्य राजा महाराजाओं की तरह भूतकाल की वस्तु हो जाते हैं। उन्हें भूतकाल की वस्तु न रहने देने के लिए ही वेदव्यास ने उनके अवतारी स्वरूप को प्रस्तुत किया है, ताकि वे वर्तमान और भविष्य के लिए भी मंगलदायक हो सकें।

यही बात भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के लोकोत्तर व्यक्तित्व एवम् कृतित्व के सम्बन्ध में भी है। प्रात: स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजी ने वाल्मीकि रामायण की राम गाथा को ऐतिहासिक चौखटे से निकालकर शाश्वतता के कक्ष में स्थापित कर सिद्ध कर दिया है कि राम जन-मन में बसनेवाले भगवान् हैं।

जो जिहि भायँ रहा अभिलाषी।
तेहिं तेहिं कै तसि तसि रुख राखी।। (अ. २४३.२१)

शेष भाग पृष्ठ ४७७ पर

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (९/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय
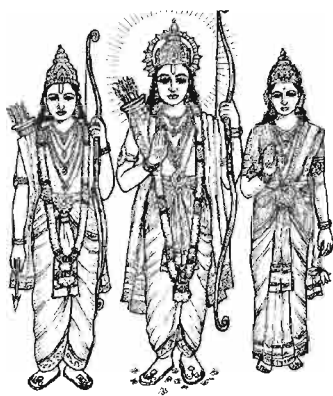
(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

अब भगवान श्रीराम की स्थिति पर विचार कीजिए, जब भगवान ने अहल्या के मस्तक पर अपनी चरण धूलि दी। श्रीराम अपने स्वभाव के अनुकूल बड़े शीलवान हैं। संसार में जब कोई देता है, तो देनेवाले के मन में किसी-न-किसी प्रकार का सात्त्विक गर्व तो आता ही है। कई लोगों में रजोगुणी गर्व या तमोगुणी गर्व आता है, किन्तु जिनमें यह दोनों नहीं आता, उनमें सात्त्विक गर्व तो आ ही जाता है। पर भगवान की विलक्षण कृपा की बात क्या थी। कृपा की बात सचमुच यही है कि लोग भगवान को कृपालु समझते हैं, कृपा को उनकी विशेषता मानते हैं, पर स्वयं प्रभु उसे अपनी विशेषता के रूप में नहीं देखते। ऐसा कह लीजिए कि वह उनके लिए मानो बाध्यता है। इस प्रसंग में विनयपत्रिका के एक पद में गोस्वामीजी बताने लगे कि इस-इस अंग से मैं ये-ये पाप करता हूँ – कान से निन्दा सुनता हूँ, नेत्र से सांसारिक सौन्दर्य देखता हूँ, जिह्वा से मैं संसार के जो सुस्वादु भोजन हैं, उसका रस लेता हूँ। जब कह चुके, तो भगवान पूछ तो नहीं रहे हैं, पर उनको लगा कि पूछ रहे हैं कि अच्छा, सब इन्द्रियों का दुरुपयोग ही करते हो कि एकाध का सदुपयोग भी करते हो? उन्होंने कहा – हाँ महाराज, मुख से मैं आपका नाम लेता हूँ। चलो, बहुत अच्छा है। नाम की महिमा तो बहुत बड़ी है। तब गोस्वामीजी ने कहा – प्रभु इस भ्रम में न पड़िएगा कि मैं नाम भी लेता हूँ। उसके पीछे एक कारण है। क्या कारण है? कैसी अन्तर्दृष्टि से गोस्वामीजी अपने दोषों को देखते हैं! उन्होंने कहा, प्रभु जैसे बहेलिया किसी चिड़िया को फँसाने के लिए जो चतुराई करता है, वही मैं करता हूँ। चिड़िया वृक्षों पर बैठने की अभ्यस्त है, पर उसे फँसाने के लिये बहेलिया एक बड़ा-सा टट्टा बाँस के सहारे खड़ा कर देता है और उस पर गोंद लगाकर पत्तों से सजा देता है। चिड़िया उसे झाड़ समझकर ज्यों ही उस पर बैठेगी, उसके पैर गोंद में चिपक जाएँगे और बहेलिया उसे पकड़ लेता है। गोस्वामीजी कहते हैं, प्रभु मैं भी वही बहेलिया हूँ। मैं भी यह जो भक्ति का हरा-हरा पता लगाता हूँ, वह इसलिये कि जानता हूँ कि इससे भक्तों का सम्मान होता है। यह जो कुछ भक्ति दिखाई देती है, वह बस दिखावे ही दिखावे की है। बोले –

बिरचि हरिभगतिको बेष बर टाटिका,

कपट-दल हरित पल्लवनि छावौं। (विनय-पत्रिका २०८/२)

कपट का हरा पत्ता, भक्ति का स्वांग और महाराज, मैंने सोचा कि एक लग्गी भी तो चाहिए और यह जो आपका नाम लेता हूँ, वह लग्गी की तरह है। उसमें मीठे बचन का गोंद लगा लेता हूँ –

नामलगि लाइ लासा ललित-बचन कहि,

किन पक्षियों को फँसाते हो? बोले –

ब्याध ज्यों विषय-बिहँगनि बझावौं। (विनय-पत्रिका २०८/२)

संसार के विषय के पक्षियों को मैं फँसाता रहता हूँ। लोग मुझे भक्त समझकर आपका नाम लेनेवाला समझकर हमें विषय लाकर दें, इसीलिए स्वाँग करता हूँ। भगवान ने कहा – बड़ा अद्‌भुत है। तब तो तुम्हें बहुत डर लगना चाहिए। उन्होंने कहा – महाराज, डरने की बात तो थी, पर मैंने सोचा कि पता लगावें कि आपका जो शरीर है, वह काहे का बना हुआ है? हम लोगों का शरीर पाँच-भौतिक है। भूत, प्रेत एक तेजस प्रधान सूक्ष्म रूप में हैं और अन्य देवताओं के शरीर भी अलग-अलग प्रकार के हैं। गोस्वामीजी ने कहा कि मैंने आपके शरीर के बारे में पता लगाया, तो मुझे पता चल गया और तब से मेरा डर छूट गया। क्या? उन्होंने कहा, महाराज –

सकल अंग पद-बिमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है।

सारे अंगों के द्वारा तो त्रुटि हो ही रही है, और मुख से नाम लेता हूँ, वह भी केवल स्वाँग के लिये। पर मैंने पता लगा लिया कि आप किसके बने हैं –

है तुलसिहिं परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है।

(विनय-पत्रिका १७०/७)

प्रभु, आप कृपा के बने हुए हैं और शब्द 'मूर्ति' जोड़ दिया। देखिए, आप जंगल में शेर देख लें या कांजी भाई के शेर, जो वे छोड़ा करते हैं, तो उन शेरों की बात अलग है। सचमुच पूछा जाय, तो आप दुर्गाजी के मंदिर में जायें और वहाँ पर देखें कि सिंह पर सिंहवाहिनी दुर्गाजी बैठी हुई हैं, तो क्या किसी को शेर से डर लगेगा कि कितना भयावना शेर है, मैं इसके पास कैसे जाऊँ? देवी माँ के हाथ में कमल है, तलवार है, सिंह पर हैं, फिर भी डर नहीं लगता। क्योंकि बुद्धिमान व्यक्ति को पता चल गया कि यह तो दिखाने के लिये सिंह है, दिखाने के लिये तलवार है, इस मूर्ति का जो निर्माण हुआ है, वह तो एक ही धातु का है। अगर मूर्ति प्रस्तर का है तो कोमल दिखनेवाला कमल का फूल भी प्रस्तर है, कठोर दिखनेवाला तलवार भी प्रस्तर का ही है, सिंह भी प्रस्तर का ही है। तब मैं समझ गया प्रभु कि आपके पास जो कुछ भी है, वह कृपा का ही है। आपसे काहे का डर है, आप करेंगे तो क्या करेंगे? आपके पास कृपा छोड़कर और क्या है? जैसे, पहले बाजार में, मेले में चीनी के बने हुई खिलौने – हाथी, घोड़े, शेर, तलवार, फूल, गुड़िया बिका करती थी। अब मान लीजिए, यदि कोई चीनी का तलवार, मिठाई बना दे, तो किसी को तलवार के नाम से भले ही डर लगे, लेकिन जब पता चल गया कि तलवार तो चीनी का है, तब तो वह उसे मुँह में डालकर उसके स्वाद का आनन्द लिए बिना नहीं रहेगा। इसलिए गोस्वामीजी कहते हैं, प्रभु आप तो कृपा के बने हुए हैं, आप कृपा को छोड़कर और कुछ कर ही नहीं सकते –

है तुलसिहिं परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है।

यह जो सत्य है, इसका अभिप्राय यह है कि भई, मेघ जब वर्षा करेगा, तो यह निर्णय करके वर्षा थोड़े ही करेगा कि यह अच्छा खेत है, यह बुरा खेत है और यह ऊसर खेत है, वह जब बरसेगा, तो अपने स्वभाव से ही बरसेगा। बरसना उसका स्वभाव है। अब यह बात और है कि ऊसर उस वर्षा का लाभ न ले सके, लेकिन मेघ जब बरसेगा, तो अपने स्वभाव से ही बरसेगा। इसलिए अहल्या ने भी भगवान से यही कहा, भगवान तो संकोच में गड़े हुए हैं। मैंने उद्धार कर दिया, उन्हें यह गर्व थोड़े ही है। कुछ लोग तो थोड़ा कल्याण करके कहते हैं कि मैंने इतने लोगों का कल्याण किया। यहाँ प्रभु संकोच में गड़े हुए हैं। क्यों? अरे! यह तो महात्मा गौतम ऋषि की पत्नी हैं, उनके चरणों में तो मुझे प्रणाम करना चाहिए था और मैं चरण धूलि स्पर्श करा रहा हूँ! प्रारम्भ में भी जब गुरुदेव ने कहा, तो उन्हें कुछ संकोच-सा लगा। पर उस समय महर्षि विश्वामित्र ने प्रभु का संकोच दूर करने के लिये कहा कि मैं अहल्या की भाषा सुन रहा हूँ। यह स्वयं कह रही है – इनसे कहिए कि ये अपनी चरण धूलि से मेरा कल्याण करें। प्रभु वैसे तो आपके नेत्रों में भी कल्याण करने की शक्ति है, भुजा में भी कल्याण करने की शक्ति है, नेत्र से भी देखते हैं, तो कृपा ही करते हैं।

राम कृपा करि चितवा सबही।
भए बिगतश्रम बानर तबही।। ६/४७/२

भगवान राम जब कृपाभरी दृष्टि से देखते हैं, तो श्रम दूर हो जाता है अथवा जब कृपा करके हाथ से किसी का शरीर छू देते हैं, तो शरीर की सारी पीड़ा मिट जाती है –

कर परसा सुग्रीव सरीरा।
तनु भा कुलिस गई सब पीरा।। ४/७/६

महर्षि ने कहा, अहल्या मुझसे कह रही है कि प्रभु से कहिए कि नेत्र से कृपा न करें। क्यों? बोले, नेत्र तो उनके बड़े अद्भुत हैं। कहीं उन्होंने मेरी ओर देखा और उनको मेरे पाप दिखाई पड़ गये, तो उनके सामने समस्या आ जायेगी कि अब देखकर अनदेखा करें क्या? तो मैं चाहती हूँ कि वे आँखें मूँद लें। तो क्या हाथ से भी कृपा न करूँ? नहीं, क्योंकि धनुष-बाण उन्होंने लिया, तो बुरे लोगों को दण्ड देने के लिये लिया। तब मैं हाथों से भी कैसे कहूँ कि आप मेरा कल्याण कीजिए। मैं तो केवल यही चाहती हूँ कि चरण से कृपा करें। क्यों? बोली, इन चरणों से जो गंगा निकली है, उसने कभी नहीं पूछा कि तुम ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो या शूद्र हो, पापी हो या पुण्यात्मा हो? इसी प्रकार से प्रभु केवल अपने उन चरणों की गंगा से इसे पवित्र कर दें। प्रभु को गुरुदेव की आज्ञा से ऐसा करना पड़ा।

अहल्या ने भगवान से यही कहा। इसमें शंकरजी को भी याद किया है, विभीषण को और अहल्या को भी याद

किया है। तो अहल्या बड़े आश्चर्य से कहती है, प्रभु कितनी आपने कृपा की –

देखेउँ भरि लोचन हरि भव लोचन इहइ लाभ संकर जाना ।
(१/२१०/३)

महाराज, आपके रूप का जो दर्शन शंकरजी को हुआ, वही लाभ आज मुझे मिल रहा है, क्या संकेत है? शंकर हैं कामारि और मैं हूँ कामग्रस्ता। आपके यहाँ अगर कोई विभाजन होता, तो जो कामारि को मिलता, वह कामग्रस्ता को तो मिलता ही नहीं। पर धन्य हैं आप, कैसा अद्‌भुत खेल किया आपने कि शंकरजी आपके चरणों को हृदय में धारण करते हैं! आपने कैसी अनोखी बात की कि शंकरजी ने चरणों से निकली गंगा के जल को सिर पर धारण किया और आपने, जिन चरणों से गंगा निकली उन चरणों को सीधे सिर पर रख दिया! इससे बढ़कर सौभाग्य मेरा क्या होगा? मानो वह कृपा का सहज स्वरूप है। इसीलिए अहल्या प्रसंग के अन्त में गोस्वामीजी कहते हैं –

अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।
तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल।।
(१/२११/०)

बस, यही सावधानी रखने की है। कारणरहित कृपालु भगवान बिना कारण के कृपा करते हैं। सुननेवाले को लगा, तब तो खूब मनमानी करो। तब गोस्वामीजी ने कहा, अरे सठ, जब वे इतने कृपालु हैं, तो –

तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल।।

वे इतने उदार हैं, तो तुम्हें लज्जा आनी चाहिये। जो इतने उदार हैं, सरल हैं, कृपालु हैं, तो तुम्हारे स्वयं के मन में यह बात नहीं आती है कि ऐसे कृपामय प्रभु का मैं स्मरण करूँ। इसमें मानो अहल्या के उद्धार के द्वारा, बुद्धि की जड़ता का उद्धार है। इसीलिए अहल्या जब जाने लगी, तब उसने कहा, महाराज, मैं गौतमजी के पास जा तो रही हूँ, पर मैं यह दावा नहीं कर सकती कि फिर मैं वही भूल नहीं दुहराऊँगी। कोई बुद्धिमान दावा नहीं कर सकता कि उसकी बुद्धि विचलित नहीं होगी। इसीलिए दवा साथ में लेते जाऊँगी कि जब वह समस्या आवे, तो दवा से तुरन्त ठीक हो जाय। तब क्या कहती हैं?

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागऊँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना।।
(१/२१०/११)

आपके चरणों की भक्ति का रस मेरा मन का भौंरा पीता रहे। इसका संकेत यह है कि विषयों का आकर्षण व्यक्ति को इसलिए होता है कि उसमें रस की प्यास है। अहल्या कहती है कि प्रभु, एक बार आपके चरणों की भक्ति का रस जिसे मिल जाये, उसकी वृत्ति अपने आप विषयों की ओर नहीं जायेगी।

दण्डक वन मन का प्रतीक है।

दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन।
जन मन अमित नाम किए पावन।। १/२३/७

दण्डक वन अपवित्र हो गया था। मुनि ने शाप दे दिया, क्योंकि वहाँ पर दण्ड राजा ने बलात्कार किया था। वह वन अपवित्र हो गया, बीहड़ हो गया। मन की यही वृत्ति अशोभन से अशोभन कार्य करने में संकोच नहीं करती है। यह वही अपावन दण्डक वन है, जहाँ सूर्पणखा और शबरी, दोनों रहती हैं। भगवान उस वन में आते हैं और सूर्पणखा का विरूपीकरण करके शबरी को भक्ति का दान देकर धन्य बनाते हैं। ये जो छह चिन्तन है, बस इतना ही सूत्र रूप में संक्षेप में कह देना चाहूँगा कि इसमें मानो संकेत यह है कि महर्षि गौतम की पत्नी अहल्या की जड़ता और दण्डक वन के रूप में मन की वृत्ति को भी धन्य बनाने की है। ये जो उच्च कोटि के भगवान शंकरजी हैं, श्रीसीताजी हैं, श्रीभरतजी हैं, इसका अभिप्राय यह है कि मानो शंकरजी भी यह अनुभव करते हैं कि शरणागति की आवश्यकता है। श्रीकिशोरीजी, जो साक्षात् शक्ति ही हैं, वे भी प्रभु से यही कहती हैं –

सम महि तृन तरुपल्लव डासी।
पाय पलोटिहि सब निसि दासी।। २/६६/५

श्रीभरतजी भी कहते हैं कि एकमात्र मुझे विश्वास है, प्रभु का स्वभाव ऐसा है कि मुझे अपना समझकर कभी त्याग नहीं करेंगे –

जद्यपि जनमु कुमातु तें मैं सठु सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस।।
२/१८३/०

मानो यह विश्वास व्यक्ति को शरणागति की दिशा में प्रेरित करता है कि भगवान का स्वभाव अत्यन्त उदार है, उनमें शील है, वे कृपालु हैं, दयालु हैं और वे कभी पुराना खाता खोलकर देखते नहीं है कि यह क्या करके आया है।

इसीलिए आगे चलकर शरणागति के प्रसंग में भगवान ने जब कहा –

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।

जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।। ५/४३/२

तब साधनों के स्वामी सुग्रीव ने कहा, क्या अनर्थ कर रहे हैं? जब आप ऐसी घोषणा करेंगे, तब तो सब पाप ही करके आपके पास आवेंगे। प्रभु ने हँसकर कहा – चिन्ता मत करो, सन्मुख आनेवालों की संख्या बहुत बड़ी नहीं है। भगवान ने कहा कठिनाई यह है कि मैं घोषणा करके यह छूट तो देता हूँ, पर –

जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई।

मोरें सनमुख आव कि सोई।। ५/४३/४

ये दुष्ट हृदयवाले बुलाने पर भी नहीं आते कि कहीं मारने के लिये तो नहीं बुला रहे हैं। इसलिए अब मैं क्या करूँ? इसका अभिप्राय यह है कि भगवान के स्वभाव का, कृपालुता का अनुभव तो वे ही करते हैं, जिनमें निराभिमानिता है। यों तो निश्चिन्त करने के लिए तुलसीदासजी ने कह दिया कि अरे देख लो न!

खीझे पै मुक्ति दई रीझे दीन्हीं लंक।

अंधाधुंध दरबार है, तुलसी भजो निसंक।।

एक को लंका दे दिया और दूसरे को मुक्ति दे दी। खीझ गये तो मुक्ति दे दी, रीझ गये तो लंका दे दिया। यह दरबार तो अंधाधुंध है, इसी को मत पढ़ लीजिएगा। यह भी उन्होंने कहा, 'तुलसी भजो'। मूल सूत्र प्रभु की कृपालुता ही है! ○○○ **(समाप्त)**

भूले स्वयं स्वरूप देखि रूप अनूप

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

चैतन्य महाप्रभु का मूल नाम विश्वम्भर था। उनका जन्म नदिया (पश्चिम बंगाल) में हुआ था। उनका जन्म नीम के एक पेड़ के नीचे होने से घर के लोग उन्हें 'निमाई' कहकर पुकारते थे। उनका रूप-सौन्दर्य अनुपम था। उनके पिता पं. जगन्नाथ मिश्र श्रीकृष्ण के परम उपासक थे। घर में सदैव 'हरिबोल' की ध्वनि सुनते-सुनते वे भी यशोदानन्दन श्रीकृष्ण के भक्त हो गए थे। मीराबाई के समान वे भी उन्मत्त होकर जब-तब गायन, कीर्तन और नर्तन करने लगते थे। इसलिए लोग उन्हें पागल समझने लगे थे।

एक दिन पड़ोस के लोगों ने उनके दिन-रात गायन कीर्तन के कारण शान्ति-भंग होने की शिकायत चाँद नामक नगर के शासक काजी से की। काजी क्रोधित होकर महाप्रभु को कैद करने के लिये चल दिया। जब निमाई को यह सूचना मिली, तो वे कीर्तन-मंडली को एक स्थान पर इकट्ठा कर गाजे-बाजे के साथ राजमार्ग पर कीर्तन-नर्तन करने लगे। जब काजी कैद करने उनके पास आया, तो वह उनकी मनमोहक छवि और गीतों की सुरीली ध्वनि से वह उन पर रीझ गया। उनके रूप का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह अपने आने का उद्देश्य ही भूल गया और उनके साथ उन्मत्त होकर नाचने लगा। थकने और चेतना आने पर वह सोचने लगा कि जब श्रीकृष्ण के भक्त के रूप से आकृष्ट हो मैं सुध-बुध खो बैठा, तो मनमोहन श्रीकृष्ण का सुन्दर रूप कितना आकर्षक होगा? भगवान की सत्ता, महत्ता एवं भगवत्ता से उसके हृदय में भक्ति के अंकुर फूट गए और उसका हृदय परिवर्तन हो गया। उसने चैतन्यदेव से कहा, 'मुझे क्षमा करें, मैंने आपको गलत समझा। लोग व्यर्थ आपको बुरा-भला कहते हैं। मैं आपकी भक्ति में बाधा नहीं डालूँगा।'' उसने दूसरे ही दिन बादशाह के पास जाकर नौकरी से मुक्त करने को कहा। वह महाप्रभु की मंडली में शामिल होकर उनका प्रिय भक्त बन गया। वैष्णव पंथ के अनुयायी आज भी नदिया में उसकी समाधि पर फूल चढ़ाते हैं। उसके वंशज वैष्णव धर्म के प्रचार-कार्य में संलग्न हैं।

साधु-संतों की संगति सर्वदा सेवनीय होती है। मनुष्य के मन में ईश्वर-भक्ति उदय होने पर वह धर्म-सम्प्रदाय भूलकर स्वयं परमात्मा की आराधना में लीन हो जाता है। ○○○

मुझे छोड़ दो, मैं अनाथ हूँ!

ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर

एक दिन एक बालक विद्यालय से अपने मित्रों के साथ घर की ओर आ रहा था, उस रास्ते में आम का एक बगीचा था। वे सभी आम तोड़ने के लिए बगीचे में गए। उसके साथी पेड़ पर चढ़े और वह बालक पेड़ के नीचे खड़ा रहा। इतने में माली आया और उस बालक को पकड़ा तथा डाँटने लगा। उसने माली से कहा, 'मुझे छोड़ दो, मैं अनाथ हूँ।' बागवान ने उसे छोड़ कर कहा, 'तुम अनाथ हो, इसका अर्थ यह नहीं हैं कि तुम ऐसे कार्य करो, बल्कि अनाथ होने से तो तुम्हें और भी अच्छा व्यवहार करने की सीख लेनी चाहिए।' बागवान के इन शब्दों को सुनने के बाद उस बालक ने निश्चय किया कि वह अपने जीवन में हमेशा अच्छा व्यवहार करेगा। वह बालक और कोई नहीं, लाल बहादुर शास्त्री थे।

लालबहादुर शास्त्री का जन्म उत्तर प्रदेश के मुगलसराय में २ अक्तूबर, १९०४ को हुआ था । उनके पिता का नाम मुंशी शारदा प्रसाद और माता श्रीमती रामदुलारी देवी थीं। लाल बहादुर को बचपन में 'नन्हें' के नाम से पुकारते थे। जब लाल बहादुर शास्त्री मात्र एक या दो वर्ष के थे, तब उनके पिता की मृत्यु हो गई और उनका लालन-पालन उनकी माता ने किया। पति की मृत्यु के बाद उनकी माता अपने पिता के घर मिर्जापुर चली गईं।

लाल बहादुर शास्त्री कक्षा छः तक मिर्जापुर से अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने के पश्चात् आगे की पढ़ाई के लिए वाराणसी गए। वहाँ उन्होंने हरिश्चन्द्र विद्यालय में प्रवेश लिया। उनका जन्म एक कायस्थ परिवार में हुआ था, उस समय नाम के साथ वर्मा या श्रीवास्तव उपनाम लगाने की परम्परा थी, जिसके कारण उनका नाम लाल बहादुर वर्मा रखा गया। उन्हें अपने नाम के साथ जातिसूचक शब्द लिखना पसन्द नहीं था। वे जाति प्रथा के विरुद्ध थे। उन्होंने अपने स्कूल के प्रधानाध्यापक से अपने नाम के साथ जातिसूचक शब्द को हटा देने के लिए प्रार्थना की। प्रधानाध्यापक ने लाल बहादुर से पूछा कि वे ऐसा क्यों करना चाहते हैं? उन्होंने उत्तर दिया, 'श्रीमान्जी, नाम से या जाति से व्यक्ति की पहचान नहीं होती है, बल्कि व्यक्ति की पहचान तो उसके कार्य से होती है। इसके बाद उन्होंने अपना उपनाम वर्मा छोड़ने का निर्णय लिया। सन् १९२५ में काशी विद्यापीठ से संस्कृत में स्नातक की डिग्री प्राप्त करने पर उन्हें 'शास्त्री' की उपाधि मिली। उसके बाद उन्होंने अपने नाम के साथ वर्मा लिखना सदा के लिए छोड़ दिया, इस प्रकार लाल बहादुर वर्मा, लाल बहादुर 'शास्त्री' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

लाल बहादुर शास्त्री बहुत सरल व्यक्ति थे। प्रधानमन्त्री होते हुए भी उन्होंने स्वयं के लिए अपने उच्च पद का लाभ नहीं उठाया। एक बार वे एक दुकान में साड़ी खरीदने गए और दुकानदार से कहा कि जल्दी ही सबसे सस्ती साड़ियाँ दिखाओ। परन्तु दुकानदार ने कीमती साड़ियाँ दिखाई। शास्त्रीजी ने कहा, भाई, इतनी महँगी नहीं, कम कीमत वाली साड़ी दिखाओ। दुकानदार ने कहा - सर, कीमत की कोई बात नहीं है, आप इन्हें अपना ही समझिए। परन्तु शास्त्रीजी नहीं माने और अन्त में दुकानदार को सस्ती साड़ियाँ ही दिखानी पड़ी।

एक बार वे जनता को सम्बोधित कर रहे थे, जनता में से किसी एक ने कहा, सर, आपका कुर्ता नीचे से फटा हुआ है। उन्होंने उत्तर दिया, मैं गरीब किसान का पुत्र हूँ, इसमें कोई लज्जा की बात नहीं है, बल्कि इससे तो मैं गरीबों के दुख को और अच्छी तरह से अनुभव कर सकता हूँ।

लाल बहादुर शास्त्री ९ जून, १९६४ से ११ जनवरी, १९६६ तक भारत के दूसरे प्रधानमन्त्री रहे। १९६५ में भारत-पाक युद्ध में भारत की जनता के मनोबल और एकजुटता के लिए उन्होंने 'जय जवान, जय किसान' का नारा दिया, जिससे सारा देश एक हो गया। पाकिस्तान के साथ समझौता-वार्तालाप के बाद ११ जनवरी, १९६६ को रूस की राजधानी ताशकन्द में ही उनकी मृत्यु हुई। कुशल नेतृत्व, सादगी भरा जीवन, देशभक्ति, ईमानदारी के लिए, शान्तचित्त व्यक्तित्व वाले लाल बहादुर शास्त्री को सन् १९६६ में मरणोपरान्त 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (५८)

स्वामी भूतेशानन्द

– महाराज! भगवान की अनन्त अनुभूति, उपलब्धि क्या है?

महाराज – भगवान का भाव अनन्त है। इसलिए उनकी उपलब्धि या अनुभूति भी अनन्त है। अर्थात् जिसकी जैसी भगवान के सम्बन्ध में धारणा है, वैसी ही वह अनुभूति करेगा, अथवा भगवान के सम्बन्ध में जिसका जैसा आदर्श है, वैसी वह उपलब्धि करेगा। किन्तु किसी की कैसी भी अनुभूति क्यों न हो, वस्तु एक ही है। एक वस्तु की ही अनुभूति की विभिन्नता से विभिन्न मतों-सम्प्रदायों की सृष्टि हुई है।

– अच्छा महाराज! विभिन्न मतों, सम्प्रदायों के आचार्यों या साधकों ने सत्य या तत्त्व को विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त किया है। तब हमलोग कैसे कहेंगे कि एक ही वस्तु विद्यमान है या सभी एक ही वस्तु का अनुभव कर रहे हैं? ऐसा भी तो हो सकता है – वस्तु विभिन्न प्रकार की है, इसलिये विभिन्न लोग विभिन्न प्रकार से अनुभव कर रहे हैं।

महाराज – नहीं, वस्तु एक ही है। किन्तु मैंने जो कहा कि अनुभव की विभिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न रूप में प्रकाशित हो रही है।

– **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** – इस वाक्य की सत्यता किसी विशेष सम्प्रदाय के आचार्य जैसे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य या माधवाचार्य, किसी के भी कथन से प्रमाणित नहीं होता है। इस कथन की सत्यता कैसे समझेंगे?

महाराज – ठाकुर ने कहा है – सभी मत, सभी धर्म सत्य हैं। सभी पथों से उन्होंने स्वयं साधना करके उन-उन पथों की सत्यता की अनुभूति करने के बाद कहा है। अत: ठाकुर के कथन से ही हमलोग समझेंगे कि वस्तु एक ही है। विभिन्न साधक अपनी-अपनी अनुभूति के अनुसार ही उसकी व्याख्या करते हैं।

– हाँ, एकमात्र ठाकुर ही यह बात कह सकते हैं। क्योंकि उन्होंने सभी सम्प्रदायों की साधना की है। अन्य किसी ने तो सभी साधनाएँ नहीं की हैं। अच्छा महाराज, वास्तव में ठाकुर का आदर्श समन्वय का आदर्श है। हमलोग इस समन्वय के भाव को अपने दैनिक जीवन में कैसे व्यवहार करेंगे? क्योंकि सबकी साधना तो नहीं की जा सकती। किसी एक को लेकर ही साधना की जाती है?

महाराज – हाँ, सत्य बात कही जाय, तो हमलोग जो साधना कर रहे हैं, वह द्वैत है। इसलिये जैसे कर रहे हो, वैसे ही करते जाओ। साथ ही 'अद्वैत-ज्ञान को आँचल में बाँधकर' अर्थात् अद्वैत तत्त्व की सत्यता को स्वीकार करते हुए साधना करते जाओ। इतना होने से ही हुआ। मानो इसके पृष्ठ में अद्वैत तत्त्व की सत्यता भावना-चिन्तन रहे।

प्रश्न – महाराज! पिछले दिन द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत के प्रसंग में वार्तालाप हुआ है। इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग से कुछ लिखकर लाया हूँ। क्या उसे पढ़ूँ?

महाराज – पढ़ो।

– स्वामी सारदानन्द जी ने लिखा है – ''श्रीरामकृष्ण देव अद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैत सभी भाव या मत को मानते थे। किन्तु वे कहते थे कि उक्त तीनों प्रकार के मत मानव-मन की उन्नति के अनुसार उत्तरोत्तर आकर उपस्थित होते हैं। किसी स्थिति में द्वैतभाव का उदय होता है, तब ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानो शेष दोनों भाव मिथ्या हैं। धर्मोन्नति के उच्चतर सोपान पर आरूढ़ होने के पश्चात् किसी दूसरी स्थिति में विशिष्टाद्वैतवाद उपस्थित होता है, उस समय ऐसा अनुभव होता है कि नित्य निर्गुण वस्तु लीला में सदा सगुण बनी हुई है। तब द्वैतवाद तो मिथ्या प्रतीत होता ही है तथा साथ-ही-साथ अद्वैतवाद के भीतर जो सत्य निहित है, उसकी भी उपलब्धि नहीं होती। जब मानव साधना की सहायता से धर्मोन्नति की अन्तिम सीमा पर पहुँचता है, तब श्रीजगदम्बा के केवल निर्गुण रूप का ही अनुभव कर उनमें अद्वैतभाव से वह अवस्थान करता है। उस समय मैं-तुम, जीव-जगत, भक्ति-मुक्ति, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, ये सब एकाकार हो जाते हैं।'' (श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग, भाग-१, पृष्ठ-४३१-४३२)

शेष भाग पृष्ठ ४६७ पर

रामकृष्ण संघ में दुर्गापूजा

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर

(गतांक का शेष भाग)

चण्डीपाठ : नवरात्रि में प्रतिदिन सुबह चण्डीपूजा के साथ चण्डीपाठ किया जाता है। शक्ति संचयन हेतु मार्कण्डेय पुराण के सात सौ श्लोकों का सस्वर पठन किया जाता है, जिसे देवीपाठ या चण्डीपाठ कहते हैं। इसे दुर्गासप्तशती या देवीमहात्म्य भी कहा जाता है। इन ७०० श्लोकों में माँ दुर्गा की महिषासुर नामक असुर पर विजय गाथा वर्णित है। इसमें चण्डीहोम करके उसमें ७०० आहुतियाँ दी जाती हैं।

पंचमी : दुर्गा का बोधन बेलूड़ मठ में संध्यारती के बाद किया जाता है। बोधन का अर्थ है जगाना। हिन्दू पौराणिक कथा के अनुसार देवी-देवता दक्षिणायन काल में छह मास (श्रावण से पौष तक) के लिए निद्रावस्था में रहते हैं। यह शारदीय दुर्गापूजा इसी बीच आती है। इसीलिए देवी को पहले जगाना पड़ता है, यही बोधन है। दुर्गापूजा का सर्वप्रथम भाग है 'बोधन'- देवी को जगाना। इस पूजा में बिल्ववृक्ष

बेलूड़ मठ में बोधन

(दो फल एक ही शाखा में लगे होने चाहिए, जिसे सप्तमी के दिन काट करके नवपत्रिका के साथ बाँधा जाता है।) के नीचे एक ताँबे का घट स्थापित किया जाता है। आजकल बिल्व वृक्ष की एक डाली लाकर उसके पास घट स्थापित करते हैं। शरत्काल देवी पूजा के लिए शुभ समय नही है। इस समय माँ निद्रित अवस्था में होती हैं। (हमारा छह मास माने माँ का एक दिन या एक रात। माघ से आषाढ़, ये छह महीने उत्तरायण और श्रावण से पौष ये छह महिने दक्षिणायन होता है। उत्तरायण के समय देवता जाग्रत होते हैं और दक्षिणायण के समय वे निद्रित होते हैं। शरत्काल दक्षिणायण में पड़ता है और देवता तब निद्रित होते हैं। जो भी हो आज वासन्ती पूजा से शारदीय पूजा का प्रचलन ही अधिक है।) इस समय यदि पूजा करनी हो, तो पहले देवी को जगाना पड़ेगा। चूँकि देवी दुर्गा को असमय नींद से जगाया जाता है, इसलिए इसे 'अकाल बोधन' भी कहते हैं।

भगवान श्रीरामचन्द्र ने भी रावण से युद्ध करने के पहले जो दुर्गापूजा की थी, वह असमय थी। इसीलिए उन्हें अकाल बोधन करना पड़ा था। ब्रह्माजी ने अन्यान्य देवताओं के साथ देवी की करबद्ध प्रार्थना की थी। उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर देवी ने उनके समक्ष कुमारी के रूप में आविर्भूत होकर कहा, 'आपलोग कल बिल्ववृक्ष के नीचे देवी का बोधन कीजिए, आपकी प्रार्थना से वे प्रबुद्ध होंगी। उनकी यथाविधि पूजा-अर्चना करने से श्रीरामचन्द्र का कार्य सिद्ध होगा।' देवी के आज्ञानुसार ब्रह्माजी अन्य देवों के साथ स्वर्गलोक से मर्त्यलोक आये। वहाँ उन्होंने एक अति दुर्गम निर्जन स्थान में एक बिल्ववृक्ष की शाखा पर हरे-भरे पत्तों के बीच निद्रित परम सुन्दरी एक बालिका मूर्ति को देखा। वह बालिका जगज्जननी महादेवी थी। ब्रह्माजी देवों के साथ देवी के चरणों में नतमस्तक होकर देवी का बोधन स्तवपाठ करने लगे।

ॐ रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च।
अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा।।

(रावण के वध के लिए एवं श्रीराम पर अनुग्रह करने के लिए ब्रह्माजी ने प्राचीन काल में देवी का अकाल बोधन किया था।)

श्रीरामचन्द्रजी ने महिषासुरमर्दिनी की पूजा १०८ नील कमल अर्पित कर तथा १०८ दीप जलाकर की थी। बृहद्धर्मपुराण के अनुसार रावण-वंश के निधन के लिए

देवों की प्रार्थना के कारण देवी बिल्ववृक्ष की शाखा पर आविर्भूत हुई थीं। इसीलिए देवी का बोधन बिल्ववृक्ष के नीचे किया जाता है।

देवों की प्रार्थना से प्रसन्न होकर देवी ने कहा – 'सप्तमी तिथि को मैं रामचन्द्र के धनुष-बाण में प्रवेश करूँगी। अष्टमी के दिन राम-रावण का महायुद्ध होगा। अष्टमी और नवमी की सन्धि के समय रावण के दसों मुण्डों का नाश होगा। वे दस मुण्ड फिर से संयुक्त होने के बाद नवमी के अपराह्न में रावण मारा जायेगा। दशमी के दिन रामचन्द्र विजयोत्सव करेंगे।' देवी की कृपा से श्रीरामचन्द्र ने रावण का वध किया और देवी सीता को मुक्त कराया। बड़ा विघ्न कट गया, इसलिए कहते हैं, 'महाष्टमी' और महासम्पद की प्राप्ति हुई, सीता की मुक्ति हुई, इसलिए कहते हैं 'महानवमी'। श्रीरामचन्द्र की इस दुर्गोत्सव का स्मरण करके हमारी शारदीय दुर्गापूजा होती है।

श्रीरामचन्द्र ने दुर्गापूजा रावण-वध और सीतादेवी की मुक्ति के लिए की थी, पर इसका हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है? जो साधक हैं, उनकी साधना ही युद्ध है, विषय-बन्धन ही उनकी बड़ी समस्या है और मुक्तिलाभ ही उनका महासम्पद है। मुक्तिप्राप्ति के लिए ही साधक जगज्जननी की पूजा करते हैं। देवी की आराधना से दशानन का वध हुआ। प्रेमभक्तिरूपिणी सीता का उद्धार हुआ महानवमी के दिन। दशमी के दिन इसी सत्यानुभूति को हृदय के अतिगुह्य स्थान चित्तदर्पण में निरंजन करके साधक विश्वमानव को भाई कहकर आलिंगन करता है।

शालग्राम शिला (नारायण शिला) : बेलूड़ मठ के पास एक जगन्नाथ मन्दिर है, जहाँ से पंचमी के दिन शालग्राम शिला ढाक, ढोल और काँसे का घण्टा बजाते हुए लाई जाती है। दुर्गापूजा के साथ-साथ शालग्राम शिला की भी पूजा प्रतिदिन होती है। यह दुर्गापूजा का महत्त्वपूर्ण अंग है। दशमी के दिन भोग-पूजादि के बाद बड़े गाजे-बाजे के साथ शालग्राम शिला पुनः जगन्नाथ मन्दिर लौटा दी जाती है। नारायण इस पूजा के साक्षी देवता होते हैं, इसलिए उन्हें दुर्गापूजा के लिए लाया जाता है और उनकी पूजा ब्रह्मचारी पूजक करता है। बेलूड़ मठ स्थित श्रीमाँ के मन्दिर में जिस शिवलिंग की नित्य-पूजा होती है, उसे इस समय दुर्गापूजा के पण्डाल में लाया जाता है। उनकी भी प्रतिदिन भोग आदि के साथ पूजा होती है और दशमी के दिन भोग-पूजादि के पश्चात् उसे भी पुनः वहीं पहुँचा दिया जाता है।

षष्ठी : यह दिन बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसी दिन पूजा का विधिवत् आरम्भ होता है। कल्पारम्भ (घटस्थापना और पूजा का संकल्प), अधिवास और आमन्त्रण (देवी को बिल्ववृक्ष से प्रतिमा में आने के लिए आवाहन किया जाता है), ये इस दिन की पूजा के विशेष अंग हैं। बिल्व वृक्ष की शाखा के पास घट-स्थापन, पूजा का संकल्प, माँ दुर्गा को जागृत करना, पीठ-पूजा, पीठ-शक्तिपूजा, २६ अधिवास मांगलिक द्रव्यों का स्पर्श करना, विघ्ननाश के लिए लाल रंग का धागा पूजा-वेदी के चारों ओर लपेटना, माँ दुर्गा को आमंत्रित करना और पूजा के बाद आरती, ये सब षष्ठी के दिन होता है। संन्यासियों के लिए दुर्गा-पूजा का विधान नहीं हैं, इसीलिए पूजा का संकल्प श्रीमाँ सारदा देवी के नाम से पुजारी ब्रह्मचारी करता है। वह पूजक सम्पूर्ण पूजा शेष होने तक दुर्गानाम जप करने का भी संकल्प लेता है।

सप्तमी : बेलूड़ मठ में सप्तमी के दिन सुबह नवपत्रिका (बिल्व जैसे नौ मंगल वृक्ष) को श्रीमाँ के घाट पर गाजे-बाजे के साथ ले जाकर स्नान कराया जाता है। उनके स्नान के उपरान्त दुर्गा प्रतिमा के पास (गणेशजी की दायीं ओर उसे स्थापित करते हैं, इसलिए प्रचलित भाषा में उसे 'कोला बहु' (गणेशजी की पत्नी) कहते हैं।) उनकी प्रतिष्ठापना कर अभिमन्त्रित किया जाता है। वैसे ही दुर्गा प्रतिमा का स्नान एक चाँदी के दर्पण में स्नान कराकर किया जाता है। उसके बाद देवी की सपरिवार विधिवत् प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। षोडशोपचार पूजोपरान्त अन्नभोग तथा आरती से सप्तमी-पूजा समाप्त होती है।

अष्टमी : सप्तमी की तरह अष्टमी के दिन महास्नान तथा षोडशोपचार पूजा के पश्चात् नौ घड़ों में विविध रंगों की ध्वजा रखकर नवदुर्गा (नवशक्ति-नवचण्डिका) की स्थापना और आवाहन किया जाता है। अन्नभोग तथा आरती के साथ अष्टमी पूजा की समाप्ति होती है। अष्टमी पूजा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है – कुमारी-पूजा और सन्धि-पूजा।

कुमारी-पूजा : हिन्दू शास्त्रों के अनुसार माँ काली द्वारा कोलासुर राक्षस के वध के उपलक्ष्य में कुमारी-पूजा की जाती है। योगिनीतन्त्र, कुलार्णवतन्त्र, देवीपुराण आदि में कुमारी-पूजा का विधान है। वह एक दिन या तीनों दिन भी की जा सकती है। इसमें एक कुमारी बालिका की पूजा की जाती है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि मातृभाव बड़ा ही शुद्ध होता है। कुमारी बालिका में दैवीभाव का प्रकाश

देखना या उसकी जननी के रूप में पूजा करना उसी शुद्धसत्त्व भाव का एक सार्थक प्रयास है। पवित्र हृदयवाली कुमारी बालिका के हृदय में जगन्माता स्वयं विशेषरूप से अवतरित होती हैं। इसीलिए कुमारी-पूजा की जाती है। ठाकुर ऐसी बालिकाओं में देवी की अभिव्यक्ति देखकर उनके सामने नतमस्तक होते थे। स्वामीजी ने जब पहली बार बेलूड़ मठ में दुर्गापूजा कराई थी, तब उन्होंने भी नौ बालिकाओं से कुमारी-पूजा की थी। आजकल केवल एक ही कुमारी की पूजा की जाती है। जिस प्रकार देवी प्रतिमा की पूजा होती है, उसी प्रकार कुमारी की भी पूजा तथा आरती होती है। कुमारी का चयन करते समय जात-पात या धर्म का विचार नहीं किया जाता। १ से १६ वर्ष की आयु की कुमारी का चयन किया जाता है। एक वर्षीय कुमारी को सन्ध्या, द्विवर्षीय कुमारी को सरस्वती, इसी प्रकार त्रिधामूर्ति, कालिका, शुभगा, पार्वती या उमा, मालिनी, कुंजिका, कालसंदर्भा, अपराजिता, रुद्राणी, भैरवी, महालक्ष्मी, पीठनायिका, क्षेत्रज्ञा, षोडशवर्षीय कुमारी को अन्नदा याा अम्बिका कहते हैं। बृहद्धर्मपुराण के अनुसार देवी चण्डिका एक कुमारी कन्या के रूप में देवताओं के सामने आविर्भूत हुई थीं। कुमारी-पूजा के ध्यान मन्त्र में है – **कन्यारूपेण देवानामग्रतो दर्शनं ददौ**। महाष्टमी के दिन कुमारी पूजा होती है, लेकिन तंत्रसार के अनुसार महानवमी के दिन भी कुमारीपूजा की जाती है। कुमारीपूजा के बिना होमादि कर्म के फल पूर्णतया नहीं मिलते।

बेलूड़ मठ में कुमारी पूजा

सन्धिपूजा : महाष्टमी के अन्तिम २४ मिनट और महानवमी के पहले २४ मिनट, ये जो ४८ मिनट हैं, यह संधिकाल है, इसमें जो पूजा होती है, उसे संधिपूजा कहते हैं। यह समय बहुत ही पवित्र माना जाता है और वह दुर्गापूजा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इस पूजा का लाभ वर्षभर की पूजा के बराबर होता है। माँ की चामुण्डा के रूप में इस समय पूजा की जाती है और उन्हें पशुबलि चढ़ाने की प्रथा है। स्वामीजी भी वैसा ही करना चाहते थे, पर श्रीमाँ ने वैसा करने से मना किया। तब से श्रीमाँ के आदेशानुसार नवमी के दिन सफेद कद्दू, गन्ना और खीरा काटकर उसकी बलि दी जाती है और सन्धिपूजा के समय एक केला काटकर बलि दी जाती है। सन्धिपूजा में देवी को १०८ दीपों की माला अर्पण की जाती है। सन्धिकाल जप-ध्यान के लिए लाभदायक होता है।

श्रीदुर्गापूजन के अवसर पर विशेषकर 'सन्धि-पूजन' के समय श्रीरामकृष्णदेव श्रीजगदम्बा के भाव में आविष्ट हो निःस्तब्ध हो जाते थे। यहाँ तक कि वे कभी-कभी वराभयमुद्राधारी भी बन जाते थे। कलकत्ते में जब वे श्यामपुकुर में रहते थे, उस समय हमें ऐसे अनेक दृष्टान्त देखने को मिलते हैं। कमरे में बैठे हुए डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार आदि प्रमुख लोगों के साथ वार्तालाप करते हुए श्रीदुर्गापूजन के सन्धि-क्षण में अकस्मात् उनको इस प्रकार का भावावेश हो गया! उस समय हास्य-छटा से समुल्लसित उनके ज्योतिर्मय मुखमण्डल तथा उससे पहले के रुग्णतावश श्यामल चेहरे को देखकर यह कौन कह सकता था कि ये वे ही व्यक्ति हैं, यह कहना किसके लिए सम्भव था कि वे रोगग्रस्त हैं!

सन् १८८५ में कलकत्ता के श्यामपुकुरवाटी में जब श्रीरामकृष्ण स्वास्थ्यलाभ करने हेतु वास कर रहे थे, तब उन्हें सन्धिकाल में समाधि लगी थी और माँ के तृतीय नेत्र का अद्भुत दर्शन भी हुआ था। भक्त सुरेशचन्द्र मित्र के यहाँ दुर्गापूजा का आयोजन हुआ था। शारीरिक अस्वस्थता के कारण ठाकुर उनके घर दुर्गापूजा के लिए जाने में असमर्थ थे।

सप्तमी पूजन समाप्त हो चुका था, महाष्टमी का दिवस था। श्यामपुकुर स्थित भवन में श्रीरामकृष्णदेव के समीप अनेक भक्त एकत्रित हो भगवच्चर्चा करते तथा भजनादि गाते

हुए आनन्द मना रहे थे। अपराह्न चार बजे डाक्टर सरकार के आने के कुछ ही क्षण बाद नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द जी) ने भजन गाना प्रारम्भ किया। उस दिव्य स्वर-लहरी को सुनकर सभी लोग आत्मविह्वल हो उठे। श्रीरामकृष्णदेव अपने समीप बैठे हुए डॉक्टर साहब को धीमे स्वर से संगीत का भावार्थ समझाने और कभी स्वल्पकाल के लिए समाधिस्थ होने लगे। भक्तों में से किसी-किसी की भावावेग से बाह्यचेतना लुप्त हो गयी।

इस प्रकार उस घर के अन्दर आनन्द का स्रोत प्रवाहित हो रहा था। रात के साढ़े सात बज गये। डॉक्टर साहब को तब कहीं होश हुआ। उन्होंने स्वामीजी को पुत्र की भाँति आलिंगन किया तथा श्रीरामकृष्णदेव से विदा लेकर, उनके खड़े होते ही श्रीरामकृष्णदेव भी हँसते हुए खड़े होकर सहसा गहरी समाधि में निमग्न हो गये। भक्तवृन्द परस्पर धीरे धीरे कहने लगे, ''इस समय 'सन्धि-पूजन' का (अष्टमी तथा नवमी तिथि के सन्धिकाल में श्रीजगन्माता का जो विशेष पूजन होता है, उसको 'सन्धिपूजन' कहते हैं) समय है न, इसीलिए श्रीरामकृष्णदेव समाधिस्थ हुए हैं! सन्धि-क्षण को जाने बिना सहसा इस समय दिव्य-आवेश में इस प्रकार उनका समाधिमग्न होना कम आश्चर्य की बात नहीं है!'' लगभग आधे घण्टे के पश्चात् उनकी समाधि भंग हुई एवं डॉक्टर साहब विदा लेकर चले गये।

श्रीरामकृष्णदेव ने समाधि अवस्था में जो दर्शन प्राप्त किया था, उसका वर्णन करते हुए वे इस प्रकार कहने लगे, ''यहाँ से सुरेन्द्र के मकान तक मुझे एक ज्योतिर्मय मार्ग दिखायी दिया। मैंने देखा कि उसकी भक्ति के कारण देवी-प्रतिमा में माँ का आविर्भाव हुआ है! उनके तृतीय नेत्र से ज्योति की किरण निकल रही है। पूजन-मण्डप में देवी के सम्मुख दीपमाला प्रज्वलित की गयी है तथा आँगन में बैठकर सुरेन्द्र व्याकुल हो 'माँ, माँ' करता हुआ रो रहा है। तुम लोग अभी वहाँ चले जाओ। तुम लोगों को देखने से उसका हृदय शान्त होगा।''

तदनन्तर श्रीरामकृष्णदेव को प्रणाम कर स्वामी विवेकानन्द आदि सभी लोग सुरेन्द्रनाथ के घर पहुँचे तथा उनसे पूछने पर उनको यह विदित हुआ कि वास्तव में देवी के सम्मुख मण्डप में दीपमाला प्रज्वलित की गयी थी और श्रीरामकृष्णदेव जिस समय समाधिस्थ हुए थे, उस समय देवी के सम्मुख स्थित आँगन में बैठकर हृदय के आवेग के साथ सुरेन्द्रनाथ ने लगभग एक घण्टे तक 'माँ, माँ' कहते हुए बालक की तरह उच्च स्वर से रोदन किया था। इस तरह बाह्य घटना के साथ श्रीरामकृष्णदेव के समाधिकालीन उक्त दर्शन की समता पाकर भक्तवृन्द विस्मित एवं आनन्दित हो आश्चर्यचकित हो गये।

इस घटना का वर्णन मास्टर महाशय ने 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' में बहुत अच्छी तरह से किया है।

आज विजयादशमी, १८ अक्तूबर, १८८५ है। श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुरवाले मकान में हैं। शरीर अस्वस्थ रहता है, अत: कलकत्ते में चिकित्सा कराने के लिए आये हैं। भक्तगण निरन्तर रहकर उनकी सेवा करते हैं। भक्तों में से अभी तक किसी ने संसार का त्याग नहीं किया। वे लोग अपने घर से आते-जाते रहते हैं।

जाड़े का मौसम है, सबेरे आठ बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण अस्वस्थ हैं, बिस्तर पर बैठे हुए हैं, जैसे पाँच वर्ष का बालक जो माता के सिवा और कुछ नहीं जानता। सुरेन्द्र आये और आसन ग्रहण किया। नवगोपाल, मास्टर तथा और भी कई लोग उपस्थित हैं। सुरेन्द्र के यहाँ दुर्गापूजा हुई थी। श्रीरामकृष्ण नहीं जा सके; भक्तों को प्रतिमा के दर्शन करने के लिए भेजा था। आज विजयादशमी है, इसीलिए सुरेन्द्र का मन कुछ उदास है।

सुरेन्द्र – मैं घर से भाग आया।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से) – प्रतिमा पानी में डाल दी गयी तो क्या, माँ बस हृदय में विराजती रहें।

सुरेन्द्र 'माँ' 'माँ' करके जगदीश्वरी के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहने लगे। श्रीरामकृष्ण सुरेन्द्र को देखते हुए आँसू बहाने लगे। मास्टर की ओर देखकर गद्गद स्वर से कहने लगे, ''अहा! कैसी भक्ति है! ईश्वर के लिए कैसा अगाध प्रेम!''

श्रीरामकृष्ण – कल साढ़े सात बजे के लगभग मैंने देखा, तुम्हारे दालान में श्रीदेवी-प्रतिमा है, चारों ओर ज्योति ही ज्योति है। सब एकाकार हो गया है – यह और वह। दोनों जगह के बीच मानो ज्योति की एक तरंग बह रही है – इस घर से तुम्हारे उस घर तक।

सुरेन्द्र – उस समय मैं देवीजीवाले दालान में खड़ा हुआ 'माँ' 'माँ' कहकर उन्हें पुकार रहा था। मेरे भाई मुझे छोड़कर ऊपर चले गये थे। मेरे मन में ऐसा जान पड़ा कि माँ कह रही हैं, 'मैं फिर आऊँगी।'

नवमी : अष्टमी की ही तरह नवमी के दिन भी महास्नान तथा षोडशोपचार पूजा के उपरान्त बलि और होम-हवन सम्पन्न किया जाता है।

दशमी : उस दिन सुबह देवी की छोटी-सी पूजा करने के बाद शीतल भोग दिखाया जाता है और आरती की जाती है। उसके उपरान्त पुजारी तथा तन्त्रधारक वेदी की प्रदक्षिणा करते हुए देवी का दर्पण में विसर्जन करते हैं। जिन नवपत्रिका तथा प्रतिमा में देवी को अभिमन्त्रित किया था, अब उन्हें अपने स्वधाम लौटने की प्रार्थना की जाती है, पर देवी भक्तों के हृदय में सदा ही विराजमान रहती हैं। सन्ध्या समय देवी-प्रतिमा को नवपत्रिका के साथ ढोल-बाजे के साथ गंगा किनारे ले जाकर गंगा में विसर्जित करते हैं। बेलूड़ मठ में प्रतिमा-विसर्जन के पहले प्रतिमा के सामने साधु-भक्त 'धुनोची नाच' (मिट्टी के बर्तन में धुना जलाकर उसको हाथों में पकड़कर किया जानेवाला बंगाल का प्रसिद्ध नाच) करते हैं। प्रतिमा-विसर्जन जहाँ करते हैं, वहाँ से लाए गये जल को 'शान्ति-जल' कहते हैं। मन्दिर या पण्डाल में वापस आने के बाद प्रत्येक साधु-भक्त एक बेलपत्ता लेकर उस पर आलता से दुर्गा नाम लिखकर एक पात्र में रखतें हैं। उस के उपरान्त पवित्र शान्ति-जल सभी भक्तों के ऊपर आम के पत्तों से छिड़का जाता है और भक्त एक-दूसरे को आलिंगन करते हैं। मिठाई का वितरण होता है। इस आनन्द के अवसर पर मूर्तिकार, वाद्ययन्त्र कलाकारों आदि को वस्त्र, प्रसाद और रुपये देकर बिदाई दी जाती है। इस प्रकार दुर्गापूजा समाप्त होती है। देवी की मृण्मयी रूप का विसर्जन हुआ है, पर वे चिन्मय रूप में सबके हृदय में विराजमान रहती हैं।

दुर्गापूजा के लिए आवश्यक उपकरण और उपचार : दुर्गापूजा को कलियुग का अश्वमेध यज्ञ कहा जाता है। क्योंकि इस पूजा के लिए आवश्यक उपकरण बहुत ही दुर्लभ होते हैं। विशेषकर बेलूड़ मठ दुर्गापूजा की सामग्री की सूची बहुत ही विस्तृत है। चार दिनों की पूजा के लिए बहुत-से फल, फूल, नैवेद्य, भोग आदि की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त बहुत-सी दुर्लभ वस्तुओं की भी आवश्यकता होती है। साधारणत: भुवनेश्वर के बिन्दुसरोवर का जल देवी के स्नानादि के लिए उपयोग किया जाता है। इसके अलावा असम के ब्रह्मपुत्र का जल, गंगाजल ऐसे बहुत से जलों और पूजार्थ कई दुर्लभ स्थानों की मिट्टी की भी आवश्यकता होती है।

कल्पारम्भ के लिए लगने वाले द्रव्य : सिन्दूर, पंचगुडी (५ रंग की पावडर - हलदी, चावल, लाल अबीर, नारियल की शिखा जलाकर किया रंग, सूखा बेलपत्र का पावडर), पंचपल्लव (५ पत्ते - आम, गुलर, बड़, पान का पत्ता, अंजीर), पंचरत्न (सोना, हीरा, नीलम, माणिक, मोती), पंचशस्य (५ धान्य - चावल, मूंग, तिल, उड़द, जव), पंचगव्य (गाय का दूध, दही, घी, गोमूत्र और गोबर), घट, दीप जलाने के लिए एक मिट्टी की हाड़ी, दर्पण, तिकाठी (एक लकड़ी की ३ शाखा), तीर-४, आतप चावल से भरा मिट्टी का कटोरा, हरा नारियल शिखा के साथ, घट को ढँकने के लिए गमछा, विष्णु के लिए सफेद धोती, कल्पारम्भ साड़ी, चण्डी साड़ी, तिल, हरितकी, पुष्प, चन्द्रमाला, दही, मधु, घी, चीनी, नैवेद्य बड़े ३, नैवेद्य छोटे १, पवित्री (पैंती) ३, मधुपर्क कटोरी-३, भोग के द्रव्य, आरती के द्रव्य।

बोधन द्रव्य : बिल्ववृक्ष अथवा दो फल के साथ बेलवृक्ष की शाखा, घट, एक बर्तन चावल, घट को ढकने के लिए गमछा, हरा नारियल शिखा के साथ, तीर काठी-४, पंचगुडी, पंचगव्य, पंचधान्य, पंचरत्न, पंचपल्लव, बोधन साड़ी, बिल्ववृक्ष पूजा धोती, पवित्री (पैंती) २, मधुपर्क-२, दही, घी, पुष्पादि, तिल, हरितकी, माषभक्तबलि (उड़द, भात, दही आदि कई पदार्थ होते हैं), नैवेद्य-२, नैवेद्य छोटे-१, छुरी, चंद्रमाला, भोग के द्रव्य, आरती के द्रव्य।

नवपत्रिका : नौ पवित्र वृक्षों की शाखायें लाकर उन्हें एकत्रित लपेटा जाता है, जिसे 'कोलाबहु' कहते हैं, जिसकी

नवपत्रिका

सप्तमी के दिन पूजा की जाती है।

कदली दाडिमी धान्यं हरिद्रा मानकं कचुः।
बिल्वाशोको जयन्ती च विद्या नवपत्रिका।।

नौ पवित्र वृक्ष जिनके नीचे देवी वास करती हैं, वे हैं - १. रम्भा वृक्ष (केला) (अधिष्ठात्री देवी - ब्रह्माणी) २. कोचु अरवी (काली) ३. हरिद्रा वृक्ष (हलदी) (दुर्गा), ४. जयन्ती वृक्ष (कार्तिकी), ५. बिल्व वृक्ष (बेल) (शिवे), ६. दाडिमी वृक्ष (अनार), (रक्तदंतिका), ७. अशोक वृक्ष (शोकरहिता), ८. मानकोचू (एक तरह की अरवी) (चामुण्डा), ९. धान पौधा (चावल) (लक्ष्मी)। (लगने वाले अन्य द्रव्य – श्वेत गोकर्ण लता, लाल धागा, आलता) श्वेत अपराजिता लता, रक्तसूत्र (लाल रंग का धागा), आलता, नवपत्रिका को बाँधने के लिए जूट की रस्सी, केला पेड़ की छाल।

आमन्त्रण के द्रव्य : साड़ी, पवित्री (पैंती) १, मधुपर्क-१, दही, मधु, चीनि, घी, पुष्पादि, नैवेद्य-१, नैवेद्य छोटा-१, तिल, हरितकी।

अधिवास २६ मांगलिक द्रव्य : १.तैलहरिद्रा (हलदी-तेल) २. गंध (चंदन) ३. भूमि (मही - गंगा की माटी का गोला) ४. शिला (छोटा पत्थर) ५. धान्य (धान अलसी) ६. दूर्वा ७. पुष्प ८. फल (एक गुच्छा केला) ९. दही १०. घृत ११. स्वस्तिक (चावल से बनाया स्वस्तिक) १२. सिन्दूर १३. शंख १४. अंजन कज्जल (काजल) १५. गोरोचन (गाय के पित्ताशय में बननेवाली एक पथरी, जो गाय के मृत्यु के बाद मिलती है) १६. सिद्धार्थ (सफेत सरसो) १७. कांचन (सुवर्ण) १८. रौप्य रजत १९. ताम्र २०. चामर २१. दर्पण २२. प्रदीप (प्रज्वलित दीप) २३. वराहदन्त २४. खड्ग (जो काली माँ के हाथ में रहता है) २५. प्रशस्तिपात्र (सूप में सब चीजें रखकर देवी को निवेदित करते हैं) २६. मांगल्यसूत्र (हल्दी लगा सूत जिसमें दूर्वा बाँधकर देवी के दायें हाथ में बाँधते हैं)

सप्तमी पूजा द्रव्य : गुरु, पुरोहित, पूजक आचार्य वरण वस्त्र-४, वरण हेतु अँगुठी, यज्ञोपवीत-४, तिल, हरितकी, पुष्प, घट, नारियल की शिखा, दो मिट्टी के बर्तन में धान या अरवा चावल, बिल्वपत्र, कुंडपात्र, तिकाठी (एक लकड़ी की ३ शाखा), बड़ा दीप, दर्पण।

महास्नान के लिए मिट्टी : १. वल्मीक २. वराहदन्त ३. वेश्या-द्वार ४. बैल का सिंग-वृषशृंग ५. अश्वदन्त ६. गजदन्त ७. पर्वत ८. देवद्वार ९. सरोवर १०. नद्युभयकुल-नदी के दोनों तीरों से ११. यज्ञशाला १२. राजद्वार १३. चौराहा १४. गंगा १५. कुशमूल १६. नद १७. नदी १८. सागर १९. गोशाला २०. सर्वतीर्थ।

स्नानीय जल : शंखजल, गंगाजल, उष्णजल, गन्धजल, पुष्पजल, फलजल, गन्ने का रस, सर्वऔषधी जल, महाऔषधी जल, पंचरत्न-जल, स्वर्ण-जल, रजत-जल, नारियल-जल, शिशिर-जल (ओसू), गुड़-जल, कर्पूर-जल, तिल-जल, विष्णु-जल, अगरू-जल, पुष्करिणी-जल, वृष्टि-जल, पंचकषाय-जल (५ प्रमुख वृक्षों की छाल जल में भिगोकर उससे निर्मित 'कषाय' (कड़वा स्वाद) जल - जामुन, सेमल, खिरैटी, मौलसी, बेर), पंचशस्य-जल (पंचधान्य), कुंकुम-जल, शर्करा-जल, सुगन्धी-जल, जवधान्यादि चूर्ण।

अष्टकलशस्नानम् : गंगाजल, वृष्टि-जल, सरस्वती-जल, ७ सागर-जल, पद्मरेणु मिश्रित जल, झरना जल, सर्वतीर्थ जल, चंदनयुक्त जल, शुद्ध जल।

तेल (तिल-तेल, विष्णु-तेल) हरिद्रा, दन्तकाष्ठ (दातून-दाँत साफ करने के लिए नीम की लकड़ी), ८ कलसी जल, सहस्रधारा पात्र, दूध, मधु, कर्पूर, अगरू, चंदन, कुंकुम, पंचगव्य, पंचामृत, कुशासन।

अन्यान्य द्रव्य : पंचगुडी, पंचरत्न, पंचशस्य, पंचपल्लव, सिन्दूर, घट को ढँकने के लिए गमछा-२, आरती के लिए गमछा, सफेद सरसो, उड़द, जवाकुसुम, नैवेद्य छोटा-१, पवित्री -४० या २२ या १, मधुपर्क कटोरी-४०, मधु, चीनी, नैवेद्य-४० या २२, प्रधान नैवेद्य-१, नवपत्रिका के लिए साड़ी-१, नवपत्रिका पूजा के लिए साड़ी-९ या १, मुख्य पूजा की साड़ी-१, साड़ी (लक्ष्मी, सरस्वती, चण्डी, धोती (कार्तिकेय, गणेश, शिव, विष्णु, नवग्रह), मयूर, मूषक, शेर, असुर, महिष, सांढ़, सर्प, जया-विजया, विष्णु, शिव और राम इन सबके लिए वस्त्र, अर्घ, चन्द्रमाला, थाल, लोटा, नथ, लोहा, शंख-२, सिन्दूर आदि प्रसाधन सामग्री की डिब्बा -१, पुष्पमाला, बिल्वपत्रमाला, फल, भोग के द्रव्य, आरती के द्रव्य, होम के द्रव्य।

अष्टमी पूजा द्रव्य : महास्नानद्रव्य, दन्तकाष्ठ, मुख्य पूजा की साड़ी-१, पुष्प, पवित्री (पैंती) ४० या २२ या १, मधुपर्क कटोरी-४०, दही, मधु, घी, चिनी, नैवेद्य-४० या

२२, नैवेद्य छोटे-४, चन्द्रमाला, पुष्पमाला, बिल्वपत्रमाला, थाल, लोटा, नथ, लोहा, शंख-२, सिन्दूर की डिब्बी -१, भोग के द्रव्य, आरती के द्रव्य।

नवघट-नवपताका : नवशक्ति-नवचण्डिका और उनकी विविध रंग की ध्वजा – १. उग्रचण्डा (लोहितवर्ण ध्वज), २. प्रचण्डा (कृष्णवर्ण), ३. चण्डोग्रा (नीलवर्ण), ४. चण्डनायिका (कर्पूरवर्ण), ५. चण्डा (धूम्रवर्ण), ६. चण्डवती (पीतवर्ण), ७. चण्डरूपा (शुभ्रवर्ण), ८. अतिचण्डिका (नानावर्ण), ९. रुद्रचण्डिका (लोहितवर्ण)

सन्धि-पूजा द्रव्य : पुष्प, सोने की अँगुठी-१, मधुपर्क कास की कटोरी-१, दही, चीनी, मधु, घी, चेली साड़ी, छोटा गमछा, प्रधान नैवेद्य-१, नैवेद्य छोटा-१, थाली-१, कलसी-१, लोहा, नथ, साड़ी-१, तकिया-१, चटाई-१, चन्द्रमाला-१, थाला-१, दीप-१०८, भोग के द्रव्य, आरती के द्रव्य।

नवमी पूजा द्रव्य : महास्नानद्रव्य, दन्तकाष्ठ, पुष्प, वस्त्र, पवित्री, मधुपर्क-१, मुख्य पूजा और चण्डी की साड़ी-१, दही, चीनी, मधु, घी, नैवेद्य-४० या २२, नैवेद्य छोटे-४, थाल-१, कटोरी-१, सिन्दूर की डिब्बी-१, लोहा, शंख, नथ, चन्द्रमाला, पुष्पमाला, रचना, पान और मसाला, होम के बिल्वपत्र, होम के द्रव्य, आरती के द्रव्य।

दशमी पूजा द्रव्य : दशोपचारपूजाद्रव्य, भांग, आरती के द्रव्य।

नाना देवीपीठ-पूजा : ६१ देवी-पीठ-स्थान और ६१ अधिष्ठात्री देवी हैं, जैसे वाराणसी की विशालाक्षी, नेपाल की नेपालवासिनी गुह्येश्वरी, कुरुक्षेत्र की कालरात्री, उज्जैन की वागीश्वरी इत्यादि।

चतुःषष्टियोगिनीपूजा (६४ देवी) : ब्रह्माणी, चण्डिका, गौरी, इन्द्राणी, भैरवी, वाराही, माहेश्वरी, सर्वमंगला, शाकंभरी, अंबिका, अपर्णा इत्यादि।

शहनाई, ढाक, ढोल, काँसे का घण्टा : बेलूड़ मठ में शहनाई-ढाक-ढोल-काँसे का घण्टा पंचमी से ही बजने लगता है। श्री.पंचानन हाजरा के परिवार के लोग परम्परागत पीढ़ियों से ढाक बजाते चले आ रहे हैं। काँसे का घण्टा – एक कासे की थाली होती है, जिसे एक लकड़ी से बजाते हैं। पंचमी के दिन ढाक-ढोल-काँसे का घण्टा बजाते हुए नारायणशिला तथा शिवलिंग पण्डाल में लाया जाता है। सप्तमी के दिन गाजे-बाजे के साथ नवपत्रिका को श्रीमाँ के घाट पर गंगास्नान कराया जाता है।

दुर्गापूजा का सार : दुर्गापूजा में लगनेवाले सुवर्ण से लेकर गोबर तक के उपकरण माँ दुर्गा के सार्वभौम व सर्वव्यापी विद्यमानता के प्रतीक हैं। माँ का प्रतिबिंब एक दर्पण में दिखता है, उस दर्पण को महास्नान कराते हैं। उसके लिए सम्पूर्ण भारत से नदियों, सागरों का जल इकट्ठा किया जाता है। इसमें कई रस और निचोड़, और कई स्थानों की मिट्टी भी लगती है। यह सब हमारे देश की एकता को दर्शाता है। नौ वृक्षों की शाखायें, जिसे नवपत्रिका कहते हैं, वे वनस्पति-सृष्टि में देवी के अस्तित्व को दर्शाती हैं। नवपत्रिका को देवी-प्रतिमा के पास रखकर उसकी नित्य-पूजा की जाती है। कुमारी-पूजा सभी नारियों में देवी के अस्तित्व को दर्शाती है। सन्धि-पूजा माँ के भीषण स्वरूप को दर्शाता है। नवमी के दिन प्रदत्त बलि को दुर्गारूपी होमाग्नि में अर्पित किया जाता है, वह पुजारी का देवी के चरणों में प्रतीकात्मक आत्मसमर्पण है। दशमी के दिन देवी-प्रतिमा का नदी में विसर्जन, देवी का अपने मूल स्वरूप में प्रत्यावर्तन है, पर देवी-भाव पुजारी के हृदय में सदैव प्रतिष्ठित रहता है। उसके बाद भक्त आपस में गले मिलकर शुभेच्छा देते हैं और मिठाई बाँटते हैं। इस प्रकार वे परस्पर सम्बन्ध को दृढ़ करते हैं। सम्पूर्ण पूजा ही प्रतीकात्मक है। पूजा में माँ के स्वागत में भक्तिपूर्ण आगमनी भजन गाये जाते हैं। साथ में दुर्गासप्तशती का पाठ होता है। सन्ध्या को सुन्दर विस्तृत आरती होती है। साधु-भक्त सभी माँ को पुष्पांजलि देते हैं, प्रसाद-वितरण होता है। इन सबसे एक दिव्य आनन्द का वातावरण निर्मित होता है, जिससे माँ की विद्यमानता की प्रतीति होती है। ○○○

स्मरण रखो : दीक्षा दान के बाद दीक्षित भक्तों को गुरू स्मरण करवा देते हैं कि आज से सर्वदा मन में धारण कर लो कि तुम्हारे इष्टदेवता तुम्हारे हृदय में बैठे हैं।

हमारा सौभाग्य : वास्तव में तुम बहुत ही भाग्यशालिनी हो, तुम्हारे इष्टदेव ने शत कोटि लोगों के समुदाय में से तुमको स्वीकार कर तुम्हें उनके नाम-मन्त्र के जप का अधिकारी बनाया है। अवश्य ही यह तुम्हारे सौभाग्य का द्योतक है।

– स्वामी गहनानन्दजी महाराज, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के १४वें परमाध्यक्ष।

('गहन-आनन्द चिन्तन' पुस्तक से)

मित्रता : एक अनमोल सम्बन्ध

मीनल जोशी, नागपुर

ना कभी इम्तिहान लेती है,
ना कभी इम्तिहान देती है।
दोस्ती तो वह है,
जो बारिश में भीगे चेहरे पर भी
आँसुओं को पहचान लेती है।

- हरिवंशराय बच्चन

मैत्री मानव जीवन का एक मधुर सम्बन्ध है। मित्र को देखकर अथवा स्मरण करते ही हमारे चेहरे पर मुस्कुराहट आ जाती है। मन में आनन्द और खुशी की लहरें उठने लगती हैं। एक नयी उमंग उभरने लगती है। सबको मित्रों के साथ समय बिताना बहुत अच्छा लगता है। कितने ही विषयों पर बातें करते हुए घण्टों बीत जाते हैं। फिर भी मित्रों के साथ बिताया हुआ समय कम ही लगता है। ऐसा क्यों होता है?

मैत्री एक नैसर्गिक, स्वाभाविक, आंतरिक, सुन्दर, सहज, सरल सम्बन्ध है। सहजता, नि:स्वार्थता, आन्तरिक, प्रेम, शुभाकांक्षा ये मैत्री के आधारभूत घटक हैं। मैत्री में 'Status' – सामाजिक स्थान का महत्त्व नहीं होता। दोनों अथवा सभी समान, स्तर पर होते हैं। हम एक-दूसरे को गुण-दोषों के साथ अपना लेते हैं। हम व्यक्ति की हृदयस्थ भावनाओं का आदर करते हैं। सुभाषितकार मैत्री के लक्षण बताते हैं –

ददाति प्रतिगृहणाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षडविधि प्रीतिलक्षणम्।।

सहजभाव से कुछ देना, आवश्यकता के अनुसार बिना संकोच से माँगना अथवा लेना, अपनी गोपनीय बातों को विश्वास के साथ बताना और पूछना, घर जाकर भी खाना और खिलाना, ये प्रीति के छह लक्षण हैं।

सामान्यत: हमारी मैत्री अपने समान स्वभाव वाले व्यक्तियों से होती है। कहा भी जाता है – **समानशीलेषु व्यसनेषु सख्यम्**। समान रुचि के लोगों में मैत्री होती है। जिसको आधुनिक भाषा में Frquency match होना कहते हैं।

संसार में व्यक्ति की पहचान उसके मित्रों से होती है – 'A man is known by his company'. हम जिनके साथ उठते बैठते हैं, उनके स्वभाव के अनुसार हमारे व्यक्तित्व की पहचान होती है।

हम बड़े गर्व से कहते हैं – 'मित्र के लिये कुछ भी कर सकते हैं।' और हम अपने मित्र के लिए 'कुछ भी' करते हैं। पंचर साइकिल को ढोना, रात-रात जागकर मित्रों के Project बनाना, बीमार होने पर उसकी सेवा-सहायता करना। हम अपने मित्र और उसके परिवार-जनों के लिये कभी कुछ काम करके प्रशंसा पाते हैं और कभी उनके कड़वे बोल भी सुन लेते हैं। मित्र के हित और प्रसन्नता के लिए कभी थोड़ा झूठ बोल देते हैं, कभी छद्म व्यवहार करते हैं।

एक पाँचवी कक्षा के बालक को उसके मित्र ने कहा कि हम आज तुम्हें पिज्जा देते हैं, तुम कल हमें बर्गर खिलाना। बालक ने माँ से बिना पूछे उपहार में मिले हुए पैसे ले लिए और अपने मित्रों को दुकान से बर्गर खरीदकर खिला दिया। क्या हम इसे सच्ची मित्रता कहेंगे? नहीं। क्योंकि जो मित्र हमें दुराचरण से रोकता है और हमारा हित जानकर अच्छे मार्ग पर ले जाता है, वह हमारा सच्चा मित्र होता है। सच्चा मित्र हमारे गुणों को सबके सामने प्रकट करता है और दोषों की चर्चा व्यक्तिगत रूप से करता है। संकटकाल में हमारी सहायता करता है। कहते हैं न – **आपत्काले तु सम्प्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत्।**

वैभवकाल में दुर्जन भी स्वार्थ हेतु मित्र बन जाते हैं। कभी देखते हैं कि जब तक मित्र के पास पार्टी देने के लिये पैसे होते हैं, तब तक उसके साथ सभी मित्रता का सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु उसकी पैसे खर्च करने की क्षमता समाप्त

होने पर सब उसे छोड़कर चले जाते हैं। क्या यह सच्ची मित्रता है? कदापि नहीं। उपयोगिता के आधार पर मैत्री का मूल्यांकन नहीं हो सकता।

कभी-कभी महाविद्यालयों में मित्रों का एक दल किसी एक व्यक्ति को चिढ़ाता है। उस पर दबाव डालता है। क्या ऐसा करना उचित है?

हम अपनी मित्रता की यह ऊर्जा किसी सत्कार्य के लिये लगा सकते हैं। हम किसी दुर्बल व्यक्ति को सताने की अपेक्षा अपनी उर्जा का सदुपयोग सामाजिक कार्यों, जैसे – स्वच्छता अभियान, साक्षरता अभियान, वृक्षारोपण आदि के द्वारा सहज ही कर सकते हैं। मित्रता में बहुत शक्ति होती है। मित्र अगर किसी आदर्श का चुनाव कर ले, तो जीवन ही परिवर्तित हो जाता है।

मैत्री की तरलता का वर्णन करते हुए सुभाषितकार कहते हैं –

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशानौ हुतः।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी।।

दूध जल को अपने गुण देता है। दूध को तप्त, उबलते देखकर जल अपने आप को कृश कर लेता है। जब दूध अपने को अग्नि को समर्पित करता है, तब जल से उसे शान्त करते हैं। सज्जनों की मैत्री जल और दूध की तरह होती है। सज्जन अपने मित्र के लिए परमोच्च त्याग भी करते हैं। क्या हमारी मैत्री ऐसी हो सकती है?

मैत्री पवित्र सम्बन्ध है। इसमें एक-दूसरे के हित की प्रार्थना है, परस्पर विश्वास है। हमारी मित्रता भिन्नलिंगी व्यक्तियों के साथ भी होती है। हम उसे Healthy Friendship कहते हैं। हम भिन्नलिंगी व्यक्ति के व्यक्तित्व का, उसकी भावनाओं का आदर करते हैं। मर्यादाओं का पालन करते हैं। किन्तु हमें सदैव सावधान रहना चाहिए, अन्धविश्वास नहीं करना चाहिए। भावनाओं के वश में होकर हम गलत आचरण में न फँसे। मैत्री की पवित्रता का आदर करना हमारा दायित्व है। मित्रता हमारा बल है, हमारी शक्ति है, दुर्बलता नहीं।

पुराणों में श्रीकृष्ण-अर्जुन, कृष्ण-सुदामा की मैत्री प्रसिद्ध है। शास्त्रों में ईश्वर के साथ मैत्री होने को 'सख्यभाव' कहते है। भक्त ईश्वर को अपना परम मित्र मानता है। उनको अपने सुख-दुख, पाप-पुण्य निवेदित करता है। हमारी यात्रा लौकिक मैत्री से इस दैवी मैत्री में परिणत हुई, तो हमारा जीवन धन्य हो जाएगा। 'सोशल मीडिया' के आधुनिक युग में क्या हम इस आदर्श तक पहुँच सकते हैं। Artifical Intelligence – कृत्रिम बुद्धिमता के आभासमय जीवन से निकलकर मानवीय संवेदनाओं को समझना और इन संवेदनाओं को ईश्वर के साथ जोड़ना यह मैत्री की यात्रा है।

हम प्रतिदिन ही Friendship - Day – 'मैत्री दिवस' मनाएँ और अपने मित्रों का जीवन प्रेममय आनन्दपूर्ण बनाएँ। ○○○

पृष्ठ ४५८ का शेष भाग

एक और स्थान पर उन्होंने कहा है – "द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत मत प्रत्येक मानव की आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ स्वत: आकर उपस्थित होते हैं। इसलिए ठाकुर कहते थे, वे परस्पर विरोधी नहीं हैं, किन्तु मानव मन की आध्यात्मिक उन्नति और अवस्था सापेक्ष हैं।"

अब प्रश्न है शरत महाराज (स्वामी सारदानन्दजी) ने तो उल्लेख किया कि धर्मोन्नति की अन्तिम सीमा में, चरम अवस्था में व्यक्ति अद्वैत भाव में अवस्थान करता है। तब तो अद्वैत ही उच्चतम हुआ?

महाराज – नहीं, अन्तिम सीमा का अर्थ उच्चतम सीमा नहीं है। जहाँ श्रीजगदम्बा के निर्गुण रूप की ही केवल उपलब्धि होती है – अर्थात् सगुण रूप में द्वैत में, जो जगदम्बा के रूप में कल्पित हैं, वे ही निर्गुण रूप में साधक को प्राप्त होती हैं और तब वे अद्वैत भाव में अवस्थान करती हैं। एक ही सत्य या तत्त्व की दो भिन्न अवस्थाएँ हैं। जो पहले आती है, वह निम्न और जो बाद में आती है, वह उच्च, ऐसा नहीं है। जो साधक जिसे लक्ष्य या आदर्श बनायेगा, उसके लिये वही उद्देश्य है और उसकी उच्चतम पराकाष्ठा की प्राप्ति ही उसके लिये उच्चतम अवस्था है। अद्वैतवेदान्ती के लिए निर्विकल्प समाधि चरम लक्ष्य है, किन्तु गोपियाँ उसकी अनुभूति नहीं करना चाहती हैं, गोपी प्रेम में भाव, महाभाव इत्यादि चरम अवस्था है। दो भिन्न मार्गों के उद्देश्य को लेकर ऊँच-नीच की तुलना नहीं होती। ठाकुर के 'अद्वैत अन्तिम बात है' का अर्थ है – जहाँ पहुँच जाने पर व्यवहार करना सम्भव नहीं होता है। अर्थात् द्वैत नहीं है। 'अन्तिम बात' अर्थात् वाणी समाप्त। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (९६)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

१०-०९-१९६३

प्रेमेश महाराज – धर्म के साथ कुछ अद्‌भुत देखने और सुनने का सम्बन्ध नहीं रहने पर मानो कुछ भी बात नहीं जमती। मेरे पिता के निधन पर वहाँ का कीचड़ बाँस की चटाई से ढककर रख दिया गया। अगले दिन उस कीचड़ पर रथ के पहिए का चिह्न दिखाई पड़ा। बाद में मुझे पता चला कि एक ब्राह्मणी ने यह करामात की थी - रात में उसने धीरे से वहाँ वह चिह्न बना दिया था। देखो न, मोक्षदा बाबू मुझमें कितना समाधिभाव देख पाते हैं – आने के समय और जाने के समय बुद्धिमानी से पैरों को हाथ से स्पर्श करते हैं। साधारण मनुष्य थोड़ा बहुत देखना चाहता है, किन्तु उसका चरित्र, उसका गुण, त्याग, प्रेम, विवेक-वैराग्य, यह सब नहीं देख पाता। जिसने काम-क्रोध-मात्सर्य आदि रिपुओं को जितना संयत किया है, वह उतना महान है। जो किसी व्यक्ति के अमंगल का चिन्तन जितना कम करता है, कल्याण-चिन्तन के अतिरिक्त अन्य चिन्तन नहीं करता, वही महान है। उसके निकट जो रहेगा, वही उसे अपना समझेगा, उससे कोई भय नहीं होगा।

एक ब्रह्मचारी काशी में आए हैं। वे बीच-बीच में महाराज के पास आते हैं। एक दिन वे बोले – एक वरिष्ठ साधु ने उन्हें संस्कृत सीखने को कहा है, किन्तु बेचारे को दिनभर इतने काम करने पड़ते हैं कि समय नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त किसके पास और कब सीखें, इसकी कोई व्यवस्था नहीं। यह सब सुनकर महाराज ने मुझसे कहा, "ऐसी व्यवस्था कर दो, जिससे वह अच्छी तरह साधु-जीवन गठित कर सके।"

इसी बीच भंडारी मनोरंजन महाराज आए। महाराज ने उनसे कहा, "भंडारी का कार्य बहुत दायित्व का कार्य है। इतने सारे लोगों की रुचि, भोजन पर ध्यान रखकर चलना पड़ता है। पूर्वी बंगाल में तीखा अधिक खाया जाता है,

स्वामी प्रेमेशानन्द

पश्चिम बंगाल में लोग उसे सह नहीं सकते। इसके अलावा, उत्तर भारतीय और दक्षिण के लोग तो हैं ही।"

११.०९.१९६३

प्रश्न – महाराज, क्या शरीर के लिये आपको कष्ट का अनुभव नहीं होता है।

महाराज – सोचकर देखो कि मैंने क्या पाया है। साक्षात् सगुण ब्रह्म श्रीमाँ को मैंने चर्म-चक्षुओं से देखा है। उनसे दीक्षा प्राप्त किया हूँ। फिर उसी मन्त्र का इतने दिनों से जप कर रहा हूँ। किन्तु भूख नहीं लगने पर क्या होगा! मेरी अवस्था कैसी है, जानते हो? मार्ग में आवश्यकता पड़ेगी समझकर पूड़ी-कचौड़ी ले लिया। किन्तु मार्ग में खाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। किन्तु इतनी सान्त्वना है कि मेरे साथ एक इतनी बड़ी सम्पत्ति है।

१२-०९-१९६३

फिर एस.के.दास की दवा चल रही है। रोग कुछ कम हुआ है। कल बजबज से दो नवयुवक आए थे। महाराज ने उनलोगों से कहा – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सदा

सभी घरों में हैं तथा एक ही व्यक्ति में कर्म-विभाग के अनुसार चारों ही वर्तमान हैं। अन्त में महाराज ने हमलोगों से कहा, ''देखा, मैंने इन सबका सब कुछ जान लिया। माता-पिता, घर में पूजा-अर्चना – क्या काम करते हैं, कब क्या करते हैं! यह जो नवयुवक 'क..' है, इसका कोई भी दायित्व नहीं है। इसके द्वारा समाज का कितना काम होता! इसको पाँच गाँवों के उन्नयन का भार दिया जा सकता था। यह गाँव में जल, रोग, भोजन – वैज्ञानिक और स्वास्थ्यप्रद आहार की व्यवस्था करके पाँच आदर्श गाँव का निर्माण कर सकता था। किन्तु इसकी सारी शक्ति कार्यालय में व्यतीत हो जाती है। मैंने इनसे एक साथ इतनी बातें कही कि कदाचित् इनके मन पर कुछ प्रभाव पड़ सके। विचार प्रदान कर दिया, कभी कोई सुयोग पाकर मन में कुछ करने की प्रेरणा मिल जाय।

एक व्यक्ति केवल 'काम-काम' करके समय बिताना चाहता है। महाराज ने उसकी ओर संकेत करके जप-ध्यान और स्वाध्याय के प्रसंग में कहा। तदुपरान्त उन्होंने कहा – ''जीवन में चालीस वर्ष तक हो-हो करके बिता दिया जाता है। मन में सुर को ठीक करके नहीं रखने से बेसुरा-बेताल गाना बजता रहता है। मन को ध्यानप्रवण करना होगा। यह निश्चित करना होगा कि किसी से भगवच्चर्चा के अतिरिक्त अन्य बातें नहीं करोगे। उससे लोग तुमको चाहे कुछ भी क्यों न कहें।''

१३-०९-१९६३

प्रश्न – आप पूर्वाश्रम में रहते समय जब ठाकुर की बातें कहते थे, तब क्या कोई बाधा नहीं आई?

महाराज – तुम सुनकर विश्वास नहीं करोगे – ब्राह्मणों में केवल बाह्य आवरण था, भीतर कुछ भी नहीं था। मेरे एक परिचित थे, वे गुरुपुत्र थे, घर-गुरुपरम्परा, बस! इधर नाम नहीं लिख सकते थे, किसी तरह 'गुर' लिखते। वह चण्डीपाठ करते, पूजा करते, दीक्षा देते, लोग सोचते कि उनके उपस्थित होने से ही भगवान सन्तुष्ट हो जाएँगे – इन सबके भीतर भगवान लीला करते हैं, समाधि, बैकुण्ठ, गोलोक, सब इनके भीतर ही है। इसीलिए मोक्षदा बाबू मुझे रहस्यमय व्यक्ति समझते हैं। इसके अलावा, कारण भी है। मैं सिलहट में ऐसे ही घर का एक नवयुवक था, जिसने उसके बाद एक आन्दोलन शुरू कर दिया। पहले विरोध हुआ, अन्ततः मैं सफल हुआ। सचमुच ही तो मेरे पास न धन था, न पद न कोई उपाधि। फिर भी इतना बड़ा आन्दोलन प्रारम्भ करना कम बात नहीं थी। पहले ब्राह्मणों ने विरोध किया, अन्त में वे लोग भी मान गए। मुझे साधक और सिद्ध कहते थे। शहर में दो दल हो गए – एक दल ने समर्थन किया, दूसरे दल ने विरोध किया। वहाँ एक सेवानिवृत्त अधिकारी थे। उन्होंने एक दिन आश्रम में आकर मुझे प्रणाम किया और आश्रम को देखकर खूब प्रशंसा किया। कुछ दिनों पूर्व ठाकुर के जन्मोत्सव पर मजिस्ट्रेट को बुलाकर सभापति बनाया। उससे उन्होंने हम लोगों की सेवा-भावना की खूब प्रशंसा की। उसी से सब कुछ बदल गया। हम लोगों की जय जयकार होने लगी। लोग भी धीरे-धीरे स्वीकार करने लगे।

०८-१०-१९६३

काशी सेवाश्रम में स्वामीजी का उत्सव चल रहा है। कल आरम्भ हुआ है। सौम्य महाराज, देवेश महाराज, जपानन्द स्वामी आए हैं। उत्सव के उपलक्ष्य में इस अंचल के लोगों के साथ मेलजोल के बारे में महाराज ने कहा, ''इस अंचल की भाषा के माध्यम से ही सब कुछ होना चाहिए। उत्सव की सफलता उत्सव के पश्चात् परिणाम देखकर निर्भर करती है। कितने नए लोगों ने आश्रम में आना-जाना आरम्भ किया, यह देखकर।''

१०-१०-१९६३

दो साधु बहुत देर तक सुषुप्ति को ही आनन्दमय कोष समझकर चर्चा कर रहे थे, उन लोगों ने महाराज से कोई प्रश्न नहीं किया। उन लोगों के चले जाने पर महाराज ने कहा, ''कारण देह को सुषुप्ति अवस्था के रूप में नहीं समझा जा सकता। वह तो अज्ञान है। चित्त ही स्थूल-सूक्ष्म का कारण है। वही कारण-शरीर है। प्राचीन लोग इस विद्यामाया के कार्य से विशेष परिचित नहीं थे। चैतन्यदेव के समय से यह मुख्यतया प्रकटित हुआ।

''तुम तो व्यायाम करते हो। प्रत्येक कार्य में प्राणमय कोश के कार्य की ओर ध्यान देना। शरीर के प्रत्येक अणु-परमाणु में प्राण किस प्रकार कार्य कर रहा है। इस प्रकार कल्पना करके भी अधिकांशतः बच जाओगे। दिनभर बीच-बीच में सोचना चाहिए – मैं चार कोशों से आवृत हूँ। ध्यान के पहले इसे स्मरण कर लेना। शक्ति का संरक्षण ही प्रथम बात है। वीर्य-धारण नहीं करने से मेधा नाड़ी नहीं खुलती। शक्ति के संरक्षण का तात्पर्य है उत्तेजित न होना। किसी भी

प्रकार की उत्तेजना – काम, क्रोध बहुत ही हानिकारक है। काम में जो लालसा है, वही महान अनिष्टकारी है, यह दिन पर दिन भोग की ओर ले जाती है।

"गीता एक पुस्तक है, एक-एक बात मानो एक-एक सूत्र है। 'प्रसंगेन फलाकांक्षी' – हममें से अनेक लोग अच्छा-अच्छा कार्य करते हैं, किन्तु फलाकांक्षी रहते हैं। सौ – रज: प्रधान, दे – सत्त्व प्रधान। दे – शान्त भाव से आता जाता है। सौ - साधारणतया कुर्सी पर बैठता है, दे - स्टूल पर बैठता है।"

काशी में एक छोटे फरसे के साथ थोड़ा लंगड़ाकर चलनेवाले एक योगी महाराज थे। एक दिन प्रेमेश महाराज ने मुझसे कहा, "तुम योगी महाराज के मुख की ओर देखना, एक अपूर्व हँसी है।" सुबह-शाम टहलते-टहलते उनके साथ भेंट होती। उनके हाथ में एक बाँस की टहनी और फूल की छोटी टोकरी थी। बच्चों की तरह हर पेड़ से फूल तोड़ते हुए चलते थे। एक दिन महुआ के पेड़ के पास भेंट हुई। पेड़ से महुआ के प्रचुर फूल गिरे हुए थे। उन्होंने प्रेमेश महाराज से कहा, "महाराज, पुराण में है कि देवी बालिका रूप में महुआ का फूल चूस-चूसकर खा रही हैं।" योगी महाराज द्वारा लिखित पूजा-पद्धति की पुस्तक प्रसिद्ध है। उनका संन्यास नाम था स्वामी कैवल्यानन्द। उनकी पूजा अपने ढंग की होती थी – पूजा समाप्त करते-करते तीन बज जाता। दोपहर में परोसकर रखा हुआ भात-तरकारी प्रतिदिन ३ बजे खाते थे। कभी अस्वस्थ नहीं होते थे। वे कौल-साधक थे। प्रेमेश महाराज भी पूर्वाश्रम में कौल-साधक थे। इसीलिए एक दिन संध्या के समय उन्होंने प्रेमेश महाराज के पास प्रस्ताव रखा – रात में वे कौल साधना करेंगे और प्रेमेश महाराज वहाँ उपस्थित रहें। प्रेमेश महाराज ने उनसे कहा, "मेरे शरीर की ऐसी स्थिति में यह सब सम्भव नहीं है।" तब योगी महाराज ने कहा, "अच्छा है, तब यहाँ से ही उसका चिन्तन कीजिएगा।" **(क्रमश:)**

भारत विश्व-इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ेगा

अजय कुमार पाण्डेय

अनुसचिव, सचिवालय लखनऊ

प्रारम्भिक दिनों की बात है, जब महात्मा गाँधीजी के विचारों से आचार्य कृपलानी की पूर्ण सहमति नहीं थी। एक दिन कृपलानीजी गाँधीजी से मिलने गये। उस समय गाँधीजी चर्खा कात रहे थे। कृपलानीजी ने गाँधीजी से कहा, मिस्टर गाँधी, मैं इतिहास का प्रोफेसर हूँ । मैंने पूरा विश्व-इतिहास पढ़ा है, किन्तु इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है कि अहिंसा के माध्यम से कोई देश परतन्त्रता से मुक्त हुआ हो और आप चर्खा चलाकर अहिंसा के माध्यम से देश को स्वतंत्र कराने चले हैं? अहिंसा के माध्यम से देश स्वतंत्र नहीं कराया जा सकता है।

गाँधीजी चर्खा चलाते रहे। तत्काल कोई प्रतिक्रिया कृपलानीजी को नहीं मिली । लेकिन कुछ क्षण बाद गाँधीजी ने चर्खा चलाते-चलाते कृपलानीजी को देखा। उनकी बात को तो सुन ही चुके थे। चूँकि कृपलानीजी प्रोफेसर थे। इतिहास उनका विषय था, इसलिए गाँधीजी ने कहा – "प्रोफेसर कृपलानी, आपने विश्व-इतिहास पढ़ा है। आपको अभी तक कोई उदाहरण नहीं मिला है कि अहिंसा के माध्यम से कोई देश स्वतंत्र हुआ है, लेकिन आप यह क्यों सोचते हैं कि विश्व-इतिहास का अन्तिम अध्याय लिखा जा चुका है। भारत विश्व-इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ेगा। अहिंसा के माध्यम से ही देश स्वतंत्र होगा।" गाँधीजी का यह आत्मविश्वास था।

रिपोर्ट बताती है कि सन् १९४७ में भारत के स्वतंत्र होने के बाद लगभग ११० देश स्वतंत्र हुए हैं। स्वतन्त्र हुए लगभग सभी देशों के स्वतंत्रता संग्राम के नेता गाँधीजी को ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रेरणास्रोत मानते हैं। हिंसा किसी भी समस्या का समाधान नहीं है। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन (१०)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

इसके बाद का श्लोक आता है -

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।१३।।

तु (परन्तु) पार्थ (हे पार्थ!) दैवीम् (दैवी) प्रकृतिम् (प्रकृति के) आश्रिता: (आश्रित) महात्मान: (महात्माजन) माम् (मुझको) अव्ययम् (अक्षर) भूतादिम् (सब प्राणियों का कारण) ज्ञात्वा (जानकर) अनन्यमनस: भजन्ति (अनन्यमन से भजते हैं)।

परन्तु हे पार्थ! दैवी प्रकृति के आश्रित महात्माजन मुझको अक्षर और सब प्राणियों का कारण जानकर अनन्यमन से भजते हैं।

प्रभु कहते हैं, तुम जानते हो कि कल्याण किनका होता है? तु शब्द कहा - परन्तु कल्याण केवल उन्हीं का होता है, जो दैवी प्रकृति-सम्पन्न हैं। जो दैवी प्रकृति के आश्रित होते हैं, वे महात्मा हो जाते हैं। उनका हृदय दूसरों के लिए रोता है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – महात्मा मैं किसे मानता हूँ? उन्होंने परिभाषा देते हुए कहा – मैं उन्हें महात्मा मानता हूँ, जिनका हृदय दूसरों के लिए रोता है। जो केवल अपने लिए रोते रहते हैं, वे तो दुरात्मा हैं। नीतिशतक में भर्तृहरि ने लिखा है कि मनुष्यों की चार श्रेणियाँ होती हैं। तीन श्रेणियों के तो नाम दे दिये, परन्तु चौथी श्रेणी का नाम वे दे नहीं सके -

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।।
- (नीतिशतक)

वे कहते हैं - सत्पुरुष कौन हैं? पहली कोटि के लोग हैं – 'परार्थघटका:' - जो दूसरों के लिए अपने स्वार्थ का परित्याग कर देते हैं, ये ही होते हैं सत्पुरुष। दूसरी कोटि होती है - 'सामान्यास्तु' – सामान्य लोगों की। सामान्य लोग दूसरों के लिए तभी तक कार्य करते हैं जब तक उनके स्वार्थ पर चोट न लगे। तीसरी कोटि के कौन लोग हैं? वे लोग मानव के रूप में राक्षस हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों के स्वार्थ का गला घोंटते हैं। दस रुपया मुझे मिल जाए, इसीलिए मैं दूसरों के १,००० रुपये का नुकसान करने के लिए तैयार हो जाता हूँ, ये लोग मानव-राक्षस होते हैं। अपने छोटे-से स्वार्थ के लिए दूसरे के महत्तर स्वार्थ को खण्डित करने के लिए तैयार रहते हैं। ये मानव के रूप में राक्षस ही होते हैं। अब चौथी कोटि क्या है? **'ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमह'** – जो निरर्थक दूसरों का अहित करते हैं। चलते-चलते अकारण किसी को मार दिया। क्यों मारा? कोई शत्रुता तो थी नहीं। मजा आ गया, बस! दूसरों के चोट खाने में इनको मजा आता है। कहते हैं कि उनका नामकरण नहीं किया जा सकता। यहाँ वही कहा गया है - जो महात्मा हैं, दैवी प्रकृति का आश्रय लेकर चलते हैं। **भजन्त्यनन्यमनसः** - वे अनन्य मन से मेरा भजन करते हैं। महत्तर

क्या जानकर भजन करते हैं? **मां भूतादिमव्ययम्** - मुझे अव्यय, अविनाशी जानकर, अक्षरस्वरूप जानकर भजन करते हैं। भूतों का आदि कारण जानकर मेरा जो भजन करते हैं। ये कौन लोग हैं? जो दैवी प्रकृति का सहारा लेते हैं और ये लोग क्या करते हैं? ये सब यहाँ पर बताया गया है कि ये कैसे कीर्तन करते हैं? इसमें बहुत अधिक जाने का प्रयोजन नहीं है। भगवान सब जगह अपनी विभूति बता रहे हैं कि मैं इसमें हूँ, मैं उसमें हूँ। मानो ईश्वर का सारा पसारा है।

भक्त की दृष्टि कैसी होती है, यह यहाँ पर बताया गया है।*

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।।१४।।
ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।।१५।।
अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।।१६।।

सततम् (निरन्तर) कीर्तयन्त: (मेरा भजन करते हुए) च (और) यतन्त: (मेरी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हुए) च (और) माम् नमस्यन्त: (मुझको प्रणाम करते हुए) दृढ़व्रता: (मेरे दृढ़निश्चयी भक्त) नित्ययुक्ता: (सदा) भक्त्या (भक्तिपूर्वक) माम् उपासते (मेरी उपासना करते हैं)।

''निरन्तर मेरा भजन करते हुए और मेरी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हुए और मुझको प्रणाम करते हुए मेरे दृढ़निश्चयी भक्त सदा भक्ति से मेरी उपासना करते हैं॥१४॥''

अन्ये (दूसरे ज्ञानयोगी) माम् (मेरी) ज्ञानयज्ञेन (ज्ञानयज्ञ के द्वारा) एकत्वेन (एकत्वभाव से) यजन्त: (पूजा करते हैं) अपि च (और भी) बहुधा (बहुत प्रकार से) विश्वतोमुखम् (मुझ विराटस्वरूप की) पृथक्त्वेन (पृथक्भाव) उपासते (उपासना करते हैं)।

''दूसरे ज्ञानयोगी मेरी ज्ञानयज्ञ के द्वारा एकत्वभाव से पूजा करते हैं और भी बहुत प्रकार से मुझ विराटस्वरूप की पृथक्भाव से उपासना करते हैं॥१५॥''

अहम् (मैं) क्रतु: (क्रतु हूँ) अहम् (मैं) यज्ञ: (यज्ञ हूँ) अहम् स्वधा औषधम् मन्त्र: आज्यम् अग्नि: (मैं स्वधा, औषधि, मंत्र, धृत, अग्नि हूँ) अहम् हुतम् अहम् एव (तथा हवनरूपी क्रिया भी मैं ही हूँ)।

''मैं क्रतु हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं स्वधा, औषधि, मंत्र, धृत, अग्नि तथा हवनरूपी क्रिया भी मैं ही हूँ॥१६॥''

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च।।१७।।
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।।१८।।
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।।१९।।

(* १४ से २१ तक के श्लोकों के प्रवचन उपलब्ध नहीं हैं। अत: स्वाध्याय की तारताम्यता हेतु मूल श्लोकों का अन्वयसहित हिन्दी अनुवाद दे रहे हैं। – सं)

अस्य (इस) जगत: (सम्पूर्ण जगत) धाता (को धारण करनेवाला) पिता माता पितामह: (पिता, माता, पितामह) वेद्यम् (जानने योग्य) पवित्रम् ओंकार: (पवित्र ओंकार) ऋक् साम च यजु: (ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी) अहम् (मैं) एव (ही हूँ)।

''इस सम्पूर्ण जगत को धारण करनेवाला पिता, माता, पितामह, जानने योग्य पवित्र ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ॥१७॥''

गति: (सबका गन्तव्य) भर्ता (पालक) प्रभु: (स्वामी) साक्षी (साक्षी) निवास: (निवास) शरणम् (शरण) सुहृत् (हिताकांक्षी) प्रभव: प्रलय: (उत्पत्ति नाश) स्थानम् (आधार) निधानम् (निधान) अव्ययम् बीजम् (जीवन का कारण) अहम् एव (मैं ही हूँ)।

''सबका गन्तव्य, पालक, स्वामी, साक्षी, निवास, शरण, हिताकांक्षी, उत्पत्ति नाश, आधार, निधान और जीवन का कारण भी मैं ही हूँ॥१८॥

अर्जुन (हे अर्जुन!) अहम् (मैं) तपामि (सूर्य का ताप हूँ) वर्षम् निगृहणामि (वर्षा को आकर्षित कर) उत्सृजामि (उसे बरसाता हूँ) अहम् एव (मैं ही) अमृतम् (जीवन) च मृत्यु: (और मृत्यु हूँ) च सत् असत् अहम् (सत् असत् भी मैं ही हूँ)।

''हे अर्जुन मैं ही सूर्य का ताप हूँ, वर्षा को आकर्षित कर उसे बरसाता हूँ, मैं ही जीवन और मृत्यु हूँ और सत् असत् भी मैं ही हूँ॥१९॥''

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।।२०।।
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना-
गतागतं कामकामा लभन्ते।।२१।।

पूतपापा: (निष्पाप लोग) त्रैविद्या: (वेदोक्त सकाम कर्म करते हुए) यज्ञै: (यज्ञों के द्वारा) माम् इष्ट्वा (मुझे पूजकर) स्वर्गतिम् प्रार्थयन्ते (स्वर्ग चाहते हैं) ते पुण्यम् (वे पुण्यभागी होकर) सुरेन्द्रलोकम् आसाद्य (स्वर्ग प्राप्त कर) दिवि दिव्यान् (स्वर्ग के दिव्य) देवभोगान् अश्नन्ति (भोगों को भोगते हैं)।

"जो निष्पाप लोग वेदोक्त सकाम कर्म करते हुए यज्ञों के द्वारा मुझे पूजकर स्वर्ग चाहते हैं, वे पुण्यभागी होकर स्वर्गलोक में दिव्य भोगों को भोगते हैं॥२०॥"

ते (वे) तम् विशालम् (उस विशाल) स्वर्गलोकम् भुक्त्वा (स्वर्गलोक को भोगकर) पुण्ये क्षीणे (पुण्य क्षीण होने पर) मर्त्यलोकम् विशन्ति (पुन: मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं) एवम् त्रयीधर्मम् (और वेदोक्त कर्मो) अनुप्रपन्ना: (का सकाम भाव से आश्रय लेनेवाले) कामकामा: (कामी) गतागतम् (बारम्बार) लभन्ते (स्वर्ग मृत्युलोक में आते-जाते हैं)।

"वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर पुन: मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं और वेदोक्त कर्मो का सकाम भाव से आश्रय लेनेवाले कामी बारम्बार स्वर्ग-मृत्युलोक में आते जाते रहते हैं॥२१॥"

अर्जुन को उपदेश देते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। २२।।

ये (जो) अनन्या: (अनन्य भक्त) माम् (मेरा) पर्युपासते (निष्काम भाव से) चिन्तयन्त: (चिन्तन करते हुए) नित्याभियुक्तानां (नित्ययुक्त रहते हैं) तेषाम् (उनका) अहम् (मैं स्वयं) योगक्षेमम् वहामि (योगक्षेम वहन करता हूँ)।

"जो अनन्य भक्त मेरा निष्काम भाव से चिन्तन करते हुए नित्ययुक्त रहते हैं, उनका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।"

यह गीता का बड़ा प्रसिद्ध श्लोक है और इसका अर्थ भी सामान्यत: हम सब लोग जानते ही हैं। भगवान अर्जुन से कह रहे हैं कि अर्जुन! जो अनन्य रूप से मेरा चिन्तन करता है, मेरी उपासना करता है और जो नित्य मेरे से युक्त है, ऐसे व्यक्तियों के योग-क्षेम का वहन मैं स्वयं करता हूँ।

योग का तात्पर्य है, जो वस्तु हमारे पास नहीं है, वह मिल जाए। क्षेम का तात्पर्य है जो वस्तु हमारे पास है उसकी रक्षा हो। मनुष्य इन्हीं दो प्रकार की चिन्ता-धाराओं से पीड़ित रहता है। एक तो उसके पास जो नहीं होता, उस अभाव की पूर्ति करना चाहता है और दूसरा उसके पास जो है, इस चिन्ता में वह व्यथित रहता है कि कहीं वह उससे छिन न जाए। भगवान दोनों प्रकार के आश्वासन दे रहे हैं कि अर्जुन जो अनन्य भाव से मेरी उपासना करता है, तो जो कुछ उसके पास नहीं है, उस अभाव की मैं पूर्ति करता हूँ और जो कुछ उसके पास है, उसकी रक्षा भी मैं करता हूँ। इस सम्बन्ध में भक्तों के जीवन-चरित्रों से कई प्रकार की गाथाएँ हमें प्राप्त होती हैं। पिछली बार श्रीरामकृष्ण के जीवन का उदाहरण दिया था कि किस प्रकार जिस वस्तु की जब भी उन्हें इच्छा हुई, जगन्माता उस इच्छा की पूर्ति कर देती थीं। पर उसके लिए भगवान पर समर्पण भी उसी प्रकार तीव्र चाहिए। जब तक ईश्वर में ऐसी अनन्य बुद्धि नहीं है, तब तक भगवान भी भक्त का भार नहीं लेते। इसीलिए यहाँ पर भगवान ने दो विशेषण लगा दिये हैं। जो अनन्य रूप से मेरा चिन्तन करता है और इस चिन्तन के द्वारा मेरी उपासना करता है और दूसरा विशेषण लगाया – **नित्याभियुक्तानाम्** – जो नित्य मेरे साथ संयुक्त है। किसी प्रकार कहीं पर खण्ड नहीं पड़ता। भगवान के साथ भाव के द्वारा जो सदा युक्त है और दूसरा जो अनन्य भाव से उनका चिन्तन करता है। अनन्य का तात्पर्य हम सभी जानते हैं, जहाँ पर हम जीवन में अपने आलम्बन के लिए भगवान को छोड़कर दूसरा कुछ देखते हैं, तो वह अनन्य उपासना नहीं कही जाती। अनन्य उपासना का तात्पर्य यह है कि भगवान को छोड़ करके मेरा दूसरा आश्रय नहीं है। संसार में जितने पुरुष हैं, जितने व्यक्ति हैं, जितनी वस्तुएँ हैं, ये समस्त मेरे आलम्बन के हेतु नहीं हैं। एकमात्र मेरा प्रेमास्पद, मेरा आलम्बन और आश्रय, 'भगवान' ही हैं, ऐसा जिसका निश्चय हो गया है, उसी को अनन्य चिन्तन कहा करते हैं।

भगवान कहते हैं कि मैं कैसी दशा में भक्तों के योग और क्षेम का वहन करता हूँ? जो इस प्रकार अनन्य रूप से मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करे और जो नित्य मेरे साथ संयुक्त हो, अर्जुन, ऐसे लोगों का योग और क्षेम मैं स्वयं वहन किया करता हूँ। हम सभी पुराणों में गजेन्द्र-मोक्ष की कथा पढ़ते और जानते हैं। यह भी जानते हैं कि जब तक ग्राह से गजेन्द्र युद्ध करता रहा, तब तक भगवान नहीं आए। किन्तु जब अपने बल का भरोसा छोड़ करके वह ईश्वर का चिन्तन करता है, मन-ही-मन विचार करता, उन्हें पुकारता है, तब भगवान तुरन्त दौड़े आते हैं और ग्राह से गज की मुक्ति करा देते हैं। उसी प्रकार दूसरी प्रसिद्ध कथा है द्रौपदी की। जब कौरवों की सभा में द्रौपदी का अपमान हो रहा था, जिस समय दुर्योधन ने द्रौपदी को विवस्त्र कर देने की आज्ञा दे दी और जब दु:शासन साड़ी खींच रहा था, तो जब तक द्रौपदी ने अपना बल लगाया, नहीं आए भगवान। वह कथा प्रचलित है। पर जिस समय द्रौपदी ने सब कुछ भगवान पर छोड़ दिया, तब वे अविलम्ब वस्त्र के रूप में आकर अवतरित होते हैं। **(क्रमशः)**

प्रश्नोपनिषद् (५)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का, 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया सरल हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रस्तुत किया जा रहा है। भाष्य में आये मूल श्लोक के शब्दों को रेखांकित कर दिया गया है और कठिन सन्धियों का विच्छेद कर सरल रूप देने का प्रयास किया गया है, ताकि नव-शिक्षार्थियों को तात्पर्य समझने में सुविधा हो। –सं.)

तथा अमूर्तो अपि प्राणो अत्ता सर्वम् एव यत् च आद्यम्। कथम् –

इसी प्रकार अमूर्त (सूक्ष्म) प्राण या अग्नि (खानेवाला) भी – सब अन्न ही है। कैसे? –

अथाऽदित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संन्निधत्ते। यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते।।६।।

अन्वयार्थ – (अब दिखाया जा रहा है कि जो अन्न है, वही प्राण भी है, अत: भोक्ता प्राण भी सर्व-स्वरूप प्रजापति है।) **अथ** और **आदित्यः** सूर्य **उदयन्** उदित होता हुआ **यत्** जो **प्राचीम्** पूर्व **दिशम्** दिशा में **प्रविशति** प्रवेश करता है, **तेन** उसके द्वारा **प्राच्यान्** पूर्व में स्थित **प्राणान्** प्राणियों के प्राणों को **रश्मिषु** (अपनी) किरणों के भीतर **संन्निधत्ते** सन्निविष्ट या आत्मसात् करता है। **दक्षिणान्** दक्षिण की ओर **यत्** जो प्रवेश करता है, **प्रतीचीम्** पश्चिम की ओर **यत्** जो, **उदीचीम्** उत्तर की ओर **यत्** जो, **अधः** नीचे की ओर **यत्** जो **ऊर्ध्वम्** ऊपर की ओर **यत्** जो **अन्तराः दिशः** दिशाओं के कोणों की ओर **यत्** जो **सर्वम्** (अन्य) सब कुछ को **यत्** जो **प्रकाशयति** प्रकाशित या स्व-ज्योति के द्वारा व्याप्त करता है, **तेन** उस व्याप्ति के द्वारा **सर्वान्** सभी दिशाओं में स्थित **प्राणान्** प्राणियों के प्राणों को **रश्मिषु** (अपनी) किरणों के भीतर **संन्निधत्ते** सन्निविष्ट अर्थात् आत्मसात् करता है।

भावार्थ – (अब दिखाया जा रहा है कि जो अन्न है, वही प्राण भी है, अत: भोक्ता प्राण भी सर्व-स्वरूप प्रजापति है।) और सूर्य उदित होता हुआ जो पूर्व दिशा में प्रवेश करता है, उसके द्वारा पूर्व में स्थित प्राणियों के प्राणों को (अपनी) किरणों के भीतर सन्निविष्ट या आत्मसात् करता है। दक्षिण की ओर जो प्रवेश करता है, पश्चिम की ओर जो, उत्तर की ओर जो, नीचे की ओर जो, ऊपर की ओर जो, दिशाओं के कोणों की ओर जो, (अन्य) सब कुछ को जो प्रकाशित या स्व-ज्योति के द्वारा व्याप्त करता है, उस व्याप्ति के द्वारा (वह) सभी दिशाओं में स्थित प्राणियों के प्राणों को (अपनी) किरणों के भीतर सन्निविष्ट या आत्मसात् करता है।

भाष्य – अथ आदित्य उदयन् उद्गच्छन् प्राणिनां चक्षु: गोचरम् आगच्छन् यत् प्राचीं दिशं स्वप्रकाशेन प्रविशति व्याप्नोति। तेन स्वात्म-व्याप्त्या सर्वान् तत्स्थान् प्राणान् प्राच्यान् अन्तर्भूतान् रश्मिषु स्वात्म-अवभास-रूपेषु व्याप्तिमत्सु व्याप्तत्वात् प्राणिन: संनिधत्ते संनिवेशयति, आत्मभूतान् करोति इत्यर्थ:।

भाष्यार्थ – अब सूर्य उदय होता हुआ, प्राणियों की दृष्टि में आता हुआ अपने प्रकाश के द्वारा पूर्व दिशा को व्याप्त कर लेता है। वह अपनी आत्म-व्याप्ति के द्वारा, प्राच्य दिशा में स्थित समस्त प्राणियों को, अपनी रश्मियों की व्याप्ति के माध्यम से स्वयं में समेट लेता है, अर्थात् आत्मसात् कर लेता है।

भाष्य – तथैव यत् प्रविशति दक्षिणां यत् प्रतीचीं यत् उदीचीम् अध: ऊर्ध्वं यत् प्रविशति यत् च अन्तरा दिश: कोण-दिश: अवान्तर-दिश: यत् च अन्यत् सर्वं प्रकाशयति तेन स्वप्रकाश-व्याप्त्या सर्वान् सर्व-दिक्-स्थान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते।।

भाष्यार्थ – उसी प्रकार (प्रकाश फैलाते हुए) जब वह – जो दक्षिण दिशा है, जो पश्चिम दिशा है, जो उत्तर दिशा है, उनमें और नीचे, ऊपर, बीच की दिशाओं, कोण की दिशाओं, गौण दिशाओं को और अन्य जो कुछ भी है, सबको वह अपने प्रकाश की व्याप्ति या विस्तार के द्वारा सभी दिशाओं में स्थित प्राणियों को अपनी रश्मियों में आत्मसात् कर लेता है।।६।। **(क्रमशः)**

साधुओं के पावन प्रसंग (२२)

स्वामी भूतेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

१९९१ ई. में मैंने लगूना में हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) के पत्रों का अँग्रेजी में अनुवाद प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् वह Spiritual Treasures (साधकों के नाम पत्र) के नाम से प्रकाशित हुआ। इसकी जानकारी देने पर उन्होंने ७ अगस्त, १९९१ को मुझे लिखा : "तुमने हरि महाराज के पत्रों का अनुवाद किया है, यह जानकर मैं बहुत आनन्दित हुआ। हरि महाराज के पत्रों से मुझे बहुत प्रेरणा मिलती है। विशेषकर जिन्हें शास्त्रों का कुछ ज्ञान है, उनके लिए उन पत्रों का बहुत महत्त्व है। यद्यपि शास्त्र-ज्ञान को छोड़कर भी, उनके पत्रों में उनके त्यागमय जीवन की जो झलक दिखती है, वह भी सबके लिए, विशेषकर हमलोगों को त्याग-मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा देगी एवं दिग्दर्शन करेगी। श्रीश्रीठाकुर की कृपा से तुम्हारा परिश्रम सफल हो, मैं ऐसी प्रार्थना करता हूँ।"

१९९६ ई. के १ जनवरी को सनफ्रांसिस्को में 'विवेकानन्द हॉल' का उद्घाटन हुआ। हम नौ संन्यासी वहाँ पर उपस्थित थे। उसके बाद ५ जनवरी को मैं बेलूड़ मठ पहुँचा। महाराज का दर्शन करना ही मुख्य उद्देश्य था। श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग का नवीन अँग्रेजी अनुवाद के सम्बन्ध में विवेचन तथा और कई प्रश्न थे। प्रतिदिन नाश्ता के बाद महाराज १५ मिनट साधु-ब्रह्मचारियों को दर्शन देते और किसी का कोई प्रश्न रहने पर उसका उत्तर देते थे। मैं जितने दिनों तक मठ में था, साधारणत: महाराज के पैरों के पास बैठकर प्रश्न करता था। वरानन्द एवं ऋतानन्द ने उन सभी प्रश्नों तथा उनके उत्तरों को टेप करके रख लिया था। उन सब वार्तालापों में से कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर का उल्लेख कर रहा हूँ –

मैं – महाराज, पिछले सप्ताह हम नौ साधु सनफ्रांसिस्को कान्वेन्ट में गये थे और वहाँ पर एक संन्यासी ने प्रश्न किया, 'What are the most essential things in monastic life?' (संन्यास जीवन में सबसे अनिवार्य क्या है?) नौ

स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज

संन्यासियों ने नौ प्रकार का उत्तर दिया। आप इस विषय में क्या कहते हैं?

महाराज – उन सभी संन्यासियों ने क्या-क्या उत्तर दिया था, पहले वह सब मुझे बताओ।

मैं – एक संन्यासी ने 'Humility and obedience' (विनम्रता और आज्ञाकारिता), दूसरे ने 'Renunciation and purity' (त्याग और पवित्रता), किसी ने 'God-realization' (ईश्वर की प्राप्ति), कोई 'Longing and austerity' (व्याकुलता और तपस्या) तथा किसी अन्य ने 'Ramakrishna-Vivekananda ideal' (रामकृष्ण-विवेकानन्द के आदर्श) इत्यादि उत्तर दिया।

महाराज – मेरा उत्तर है – इन सब गुणों को एकत्रित करने से जो होगा, वह होगा साधु का आदर्श।

मैं – १९७७ ई. में काशी में मैंने बुद्ध महाराज (स्वामी भास्वरानन्द जी) से प्रश्न किया था कि राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) ने आपको क्या उपदेश दिया था? उन्होंने थोड़ा हँसकर उत्तर दिया, 'महाराज ने कहा था, सत्य एवं ब्रह्मचर्य – इन दोनों का पालन करना ही पर्याप्त है।'

महाराज – ब्रह्मचर्य क्या है, जानते हो? केवल celibacy ही ब्रह्मचर्य नहीं है। There are many eunuchs. Are they brahmacharins? (बहुत सारे नपुंसक हैं। क्या वे ब्रह्मचारी हैं?)

महाराज उसके बाद मीराबाई का एक भजन गाने लगे –

साधन करना चाही रे मनवा भजन करना चाही।
प्रेम लगाना चाही रे मनवा प्रीत करना चाही।।
नित नाहन से हरि मिले तो जल जन्तु होय।
फल मूल खाके हरि मिले तो बांदुर बाँदराय।।
तुलसी पूजन से हरि मिले तो मैं पूजूँ तुलसी झाड़।
पत्थर पूजन से हरि मिले तो मैं पूजूँ पहाड़।।
तिरण् भखन से हरि मिले तो बहुत मृगी अजा।
स्त्री छोड़न से हरि मिले तो बहुत रहे हैं खोजा।।
दूध पीने से हरि मिले तो बहुत रहे वत्स बाला।
मीरा कहे बिना प्रेम के नहीं मिले नन्दलाला।।

मैंने – महाराज, पाश्चात्य में लोग कई प्रश्न करते हैं, 'ठाकुर को देखा नहीं, तो किस प्रकार उनको प्रेम करेंगे? किस प्रकार भगवान से सम्बन्ध बनायेंगे?'

महाराज – क्योंकि श्रीरामकृष्ण तुम्हारी आत्मा हैं। तुम उनको प्रेम किये बिना नहीं रह सकते। भगवान सबकी आत्मा हैं। तुम क्या स्वयं को प्रेम नहीं करते? **'न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।... न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति।** (अर्थात् अरी मैत्रेयि! यह निश्चय है कि पति के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपने लिये ही पति प्रिय होता है; ... धन के प्रयोजन के लिए धन प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिए धन प्रिय होता है।) (बृहदारण्यक उपनिषद २/४/५)

११ जनवरी, १९९६, बेलूड़ मठ, प्रातः ७.४५ बजे

पूजनीय गंगाधर महाराज (स्वामी अखण्डानन्द जी) के विषय में महाराज ने कुछ संस्मरण बताये। एक दिन भूतेशानन्दजी ने मठ के दक्षिण ओर के (पल्लीमंगल के सामने वाला द्वार) लकड़ी के द्वार को फाँदकर भीतर प्रवेश किया। उनके पीछे एक पागल कँधा में झोला लटकाये द्वार को ऊँचा उठाकर भीतर प्रवेश करने का प्रयत्न करने लगा। मठ के बरामदे से यह देखकर गंगाधर महाराज ने भूतेशानन्दजी को कहा, "तुम्हें देखना चाहिए था कि तुम्हारे पीछे कौन आ रहा है? हो सकता है कि वह व्यक्ति पागल हो, परन्तु तुमने उसकी सहायता क्यों नहीं की?" भूतेशानन्दजी ने विनम्र होकर उत्तर दिया "महाराज, मुझसे भूल हो गयी।" साधु-जीवन में अपनी भूल को स्वीकार कर स्वयं में सुधार लाना अत्यावश्यक होता है। इस घटना के माध्यम से महाराज ने इस गूढ़ अर्थ को हमें समझाया।

कई संन्यासी – महाराज, पूजनीय शरत महाराज (स्वामी सारदानन्द जी) के विषय में हमें कोई घटना बताइये।

महाराज – बेलूड़ मठ में श्रीश्रीमाँ के पूत देह के अन्तिम संस्कार के उपरान्त कई भक्त श्रीश्रीमाँ की अस्थि का संग्रह करने लगे। जब शरत महाराज ने यह देखा, तब उन्होंने उच्चे स्वर में कहा, "जो लोग श्रीश्रीमाँ की यह अस्थि ले रहे हैं, वे यदि प्रतिदिन बहुत श्रद्धा-भक्ति के साथ उसकी पूजा नहीं करेंगे, तो उनका स-र्व-ना-श होगा।" मैंने कभी भी इतने उच्चे स्वर से उनको बोलते हुए नहीं सुना था। जिन भक्तों ने अस्थि-संग्रह किया था, उनलोगों ने भय से उसे समाधिस्थल पर ही छोड़ दिया।

१२ जनवरी, १९९६, बेलूड़ मठ, प्रातः ७.४५ बजे

मैं – कोई पाश्चात्यवासी यदि आपसे कहे कि वह वेदान्त जानना चाहता है, तो आप उसे कौन-सी पुस्तक का सुझाव देंगे?

महाराज – स्वामीजी की पुस्तक, विशेषकर 'ज्ञानयोग'।

मैं – एक संन्यासी का व्यवहार कैसा होना चाहिए?

महाराज – एक यथार्थ संन्यासी दूसरों को आनन्द देता है। वह अपने आध्यात्मिक आनन्द का भाग दूसरों को देगा। **'शान्तो महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।'** अर्थात् लोकहित का आचरण करते हुए अति शान्त महात्मा ऋतुराज वसन्त की तरह विचरण करते हैं। (विवेकचूडामणि-३७)। यथार्थ संन्यासी केवल ईश्वर के विषय में ही वार्तालाप करता है। मन के नीचे चक्र में आने पर ही लड़ाई-झगड़ा आरम्भ होता है। इसलिए मन को सदा ऊपरी चक्रों पर ही बनाए रखना चाहिए, जहाँ पर केवल आनन्द और एकत्व की अनुभूति होती रहती है।

श्रीमाँ को यदि कोई ठाकुर के विषय में कुछ बताने के लिए कहता, तो वे उत्तर देतीं, 'मैं केवल उनको ही जानती हूँ और केवल उनकी ही बातें कहती हूँ।' **'उपनिषदं भो**

ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति।' (अर्थात् शिष्य ने गुरु से प्रार्थना की – 'भगवन्! मुझे उपनिषद् – रहस्यमयी विद्या का उपदेश कीजिये।' इस पर गुरुदेव ने कहा – 'वत्स! हम तुम्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश कर चुके हैं।') **(केनोपनिषद् -४/७)**

मैं – महाराज, उपनिषदों में आपका सबसे प्रिय श्लोक कौन-सा है?

महाराज – तुमने मुझे संकट में डाल दिया। तदुपरान्त उन्होंने बृहदारण्यक उपनिषद का श्लोक कहा–

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्।। (४/४/१२)

– अर्थात् यदि पुरुष आत्मा को 'मैं यह हूँ' इस प्रकार विशेष रूप से जान ले, तो फिर क्या इच्छा करता हुआ और किस कामना से शरीर के पीछे संतप्त हो?। ऐसा लगा कि जैसे वे अपने स्वयं के अनुभव से बोल रहे हों।

मैं – किन्तु आपने वचनामृत-प्रसंग और कई व्याख्यानों में कठोपनिषद के इस श्लोक का उल्लेख किया है –

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम।।२/१/१५।।

– अर्थात् जिस प्रकार निर्मल जल में मेघों द्वारा सब ओर से बरसाया हुआ वर्षा का निर्मल जल निर्मल ही हो जाता है। हे गौतमवंशी नचिकेता! उसी प्रकार, एकमात्र परब्रह्म पुरुषोत्तम ही सब कुछ हैं, ऐसा जाननेवाले मुनि का आत्मा ब्रह्म ही हो जाता है।

३१ जनवरी, १९९६, बेलूड़ मठ

इस दिन दीक्षा थी। इसलिए महाराज का प्रणाम संन्यासी-ब्रह्मचारियों के लिए बन्द था। दीक्षा के उपरान्त मैं उनसे विदाई लेने के लिए गया। उन्होंने मेरे सिर को अपने हृदय से लगाकर दिल खोलकर आशीर्वाद दिया।

अमेरिका आने के बाद महाराज के दर्शन की बहुत इच्छा होती थी। उन्हीं दिनों ऐसा एक संयोग उपस्थित हो गया। ३ अगस्त, १९९७ को टोकियो, जापान से मुझे व्याख्यान का निमन्त्रण आया। बस, उस संयोग से जापान से सिंगापुर होकर ५ अगस्त को मैं बेलूड़ मठ पहुँचा। दूसरे दिन प्रात: ७ बजे महाराज का दर्शन करने गया। वहाँ पर सुना, महाराज का शरीर कुछ स्वस्थ नहीं है। डॉक्टरों ने उनकी सुरक्षा हेतु काँच के दरवाजा-खिड़की से संन्यासी और भक्तों को दर्शन करने हेतु निर्देश दिया है। किन्तु मैं दूर विदेश से आया हूँ, इसलिए मुझे अन्दर जाकर उनका चरण-स्पर्श करने की अनुमति मिल गयी। उन्होंने पुन: मेरे सिर को अपने हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया और कहा, "सुनो, मुझे बहुत खराब लगता है कि साधु-ब्रह्मचारी मेरे पास नहीं आ पा रहे हैं। वे बाहर से ही प्रणाम करके चले जाते हैं। वायरस से दूसरों को संक्रमण न हो, इसीलिए डाक्टरों ने ऐसा निर्णय लिया है।"

मैं – केशवचन्द्र सेन ने ठाकुर के विषय में कहा था, 'दक्षिणेश्वर के परमहंसदेव साधारण व्यक्ति नहीं हैं।... इस प्रकार की सुन्दर मूल्यवान वस्तु को काँच की आलमारी में रखना चाहिए।' इसलिए आपको काँच की आलमारी के भीतर रखा गया है।

महाराज के कमीज में माइक्रोफोन लगाया हुआ था। संन्यासियों को लक्ष्य करते हुए उन्होंने कहा, "देखो, I am important. मेरे पैरों के पास अमेरिका का यह साधु गाय की तरह बैठा हुआ है।" सब हँसने लगे।

मैं – You are great. अधर सेन ने ठाकुर से कहा था, 'आपके पास क्या शक्ति है?' ठाकुर ने कहा, 'जो लोग डिप्टी होकर दूसरे को भय दिखाते है, माँ की इच्छा से मैं वैसे सब डिप्टीयों को सुलाकर रखता हूँ।' **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४५२ का शेष भाग

भागवत वर्णित भगवान् के अन्य अवतार – नृसिंह, वामन, वराह आदि का ऐतिहासिक व्यक्तित्व आध्यात्मिक जीवन के लिए अनिवार्य नहीं है। वे तो भगवान् के ऐसे शाश्वत रूप हैं, जिन्हें हृदय की अभीप्सा तथा भगवान् की अनुकम्पा से कभी भी देखा या सुना जा सकता है। सनातन हिन्दू धर्म को सनातन कहते ही इसलिए हैं कि इसकी विषय-वस्तु इतिहास तक सीमित नहीं है। शाश्वत मूल्यों पर आधारित होने के कारण ही हिन्दू धर्म को सनातन धर्म कहा जाता है। अत: भागवत महापुराण का स्वाध्याय एवं श्रवण इसे चिर शाश्वत एवं नित नूतन मानकर ही करना चाहिये। रामकृष्ण मिशन के स्वामी तपस्यानन्द जी ने भागवत के सम्बन्ध में लिखा है – "पुराणों के समान अन्य किसी साहित्य ने ईश्वर को जीवन्त नहीं बना पाया है।"○○○ **(समाप्त)**

भगवन्नाम का संस्कार डालो

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

हमारे जीवन में कर्मों का बड़ा महत्त्व है। कर्म से ही संस्कार बनते हैं। संस्कार ही मानव के विकास में सहायक होते हैं। भगवान का नाम लेने के लिए भी नित्य अभ्यास करना चाहिए। नाम-जप में नियमितता होनी चाहिए। उससे नाम लेने की आदत बन जायेगी। भगवान के नाम लेने का संस्कार बन जाएगा। भगवन्नाम का संस्कार भगवान के साक्षात्कार में परम सहायक होगा।

भगवान को कैसे पुकारें? प्रेम से भगवान को पुकारना चाहिए। इस जन्म में हमने जो अच्छे कर्म किये हैं, भगवान का नाम जप किया है, तो वही हमारे साथ जाता है, दूसरी कोई भी वस्तु हमारे साथ नहीं जाती। इस जन्म में किया हुआ अच्छा कर्म व्यर्थ नहीं जाता। हम भूत-भविष्य के चक्कर में न पड़कर वर्तमान को सुधारें। वर्तमान से ही अच्छा भविष्य बनता है। अभी अच्छा जीवन बिताने से अच्छा भविष्य बनता है। वर्तमान में भगवान का नाम लेने से भविष्य में, परवर्ती जीवन में भी भगवान के नाम लेने का अभ्यास हो जाएगा, नाम लेने का संस्कार बन जाएगा। नाम लेने से मनुष्य शुद्ध-पवित्र हो जाता है। महापुरुषों की यह वाणी बिल्कुल सत्य है। इसलिये सदा नाम-जप का अभ्यास करते रहो।

किसी का दोष देखने में समय व्यर्थ न गँवाओ। यदि दोष देखना ही है, तो अपने भीतर क्या दोष है, उसे देखो। दोषों से मुक्त होने हेतु अपने मन को समझाओ, भगवान से प्रार्थना करो, तो तुम सुधर जाओगे।

महापुरुष कहते हैं, यह संसार न अच्छा है, न बुरा। जैसा तुम्हारा मन होता है, वैसा संसार तुम्हें लगता है। संसार में अच्छा-बुरा मत देखो। सबसे अच्छा सम्बन्ध रखो। तुम्हारा जितने लोगों से सम्पर्क है, वही तुम्हारा अपना संसार है। उन लोगों से सद्व्यवहार करो। घर में सबको समान प्रेम दो। सबकी सेवा करो, सबको सुखी रखो। प्रेम सबसे करो, लेकिन भगवान को ही अपना समझो।

अपनत्व भाव अपने गुरु और इष्ट में ही रखो। जब तक हम जीवित हैं, तब तक अनुकूलता-प्रतिकूलता तो रहेगी ही। अत: हम विचार कर यह निर्धारित कर लें कि हमें भगवान के ही अनुकूल रहना है।

लोग मृत्यु से सदा डरते रहते हैं। क्या डरने से मृत्यु छोड़ देगी? भगवान का भक्त कभी मृत्यु से नहीं डरता। बल्कि इस नाशवान जीवन में मृत्यु की यथार्थता का स्मरण कर भगवान के नाम को सदा जपता रहता है, भगवान को सदा स्मरण करता रहता है। भगवान से मृत्यु भी डरती है। इस मृत्यु से निडर होकर भगवान का स्मरण करते रहो।

यह संसार भगवान का बनाया हुआ है। इस संसार के सभी चीजों में भगवान ही व्याप्त हैं। अत: सबके मंगल की कामना करें। भगवान सबका मंगल करें, यही भावना मन में रखकर संसार में रहें।

हम आत्मनिर्भर रहें। हमें किसी के आगे हाथ न फैलाना पड़े। हमें किसी से कोई अपेक्षा न रहे। हमारे कारण कहीं भी, दूसरों को कोई भी असुविधा न हो, इसका ध्यान रखें। भगवान ने हमें जो दिया है, जो हमारे पास है, उसे भगवान की सेवा में समर्पित कर दें। विषयी लोगों से दूर रहें। उन्हें दूर से ही नमस्कार करना चाहिए। उनसे तो दूर ही रहना चाहिए। संसार के लोग बहुत स्वार्थी होते हैं, वे तो मरने के बाद अपनी हड्डियाँ तक ले जाने को तैयार रहेंगे। संसार के जोड़-तोड़ से हमें कभी भी निश्चिन्तता नहीं होगी। इसलिए भगवान के सिवाय किसी की भी अपेक्षा नहीं करनी है। अन्त समय में प्रभु ही याद आयें, तो हमारा कल्याण होगा। संसार-चक्र से बचने का यत्न करें। जब भी सुविधा मिले सत्संग करें या सद्ग्रन्थ पढ़ें, संसार की चर्चा न करें। हमारी इच्छा के बिना संसार हमें नहीं बाँध सकता। अत: संसार में न बँधकर भगवान के शरणागत होकर रहें। हम अनन्त काल तक नहीं रहेंगे। जैसे सुबह का सूरज शाम को डूबता ही है, वैसा ही हमारा जीवन है। सब कुछ छोड़कर हमें जाना ही पड़ता है। महामाया से बचना बहुत कठिन है, किन्तु भगवान ने हमें बुद्धि दी है, तो अपनी बुद्धि से सोचकर विषय को छोड़ दें और भगवान को ग्रहण करें। ○○○

रामकृष्ण मिशन के अन्तर्राष्ट्रीय विभिन्न केन्द्रों द्वारा कोरोना राहत कार्य किए गये –

रामकृष्ण मिशन, सिंगापुर ने १४ अप्रैल से ३१ मई, २०२० तक गरीबों और अभावग्रस्तों को निम्नलिखित सामग्रियाँ वितरित कीं – ३२,५१४ प्लेट खिचड़ी, १०५ कि.ग्राम मूरी, ५५ कि.ग्रा. खजूर, ७५५ कि.ग्रा. स्नैक्स, ४७५ कि.ग्रा. बिस्कुट, ६८ कि.ग्रा. दूध-पाउडर, ३५ कि.ग्रा. एनर्जी पाउडर, २५४५ कॉफी पाउडर, ८० कि.ग्रा. सर्फ,२४ बोतल सैम्फू, ७८५ साबून, ५०० सेनेटेनरी किट्स (प्रत्येक किट्स में १ तौलिया, १ टूथब्रस, १ टूथपेस्ट, १ साबून, १ बोतल सैम्पू, १ बोतल सेनिटाइजर, १ पैकेट सेविंग ब्लेड, १ जोड़ा चप्पल, २ सर्ट और २ पैजामा।

दक्षिण अफ्रिका

(अ) रामकृष्ण सेन्टर ऑफ साउथ अफ्रिका, डर्बन ने अपने उप-केन्द्र चैट्सवर्थ, लेडिस्मिथ, न्यूकैस्टल और पीटरमेरीट्जबर्ग के द्वारा जून, २०२० में १४६८ परिवारों में निम्नलिखित वस्तुओं का वितरण किया –

२९३६ कि. चावल, १४६८ कि. मैज्ड मील,१४६८ कि. दाल, २९३६ कि. बेक्ड बीन्स, ५१८० कि. नूडल्स, ७३४ कि. मकरोनी, १४६८ पैकेट साबून, १४७ कि. एसोर्टेड स्पाइसेस, ७३४ कि. नमक, ११०१ लीटर खाद्य-तेल, ७३४ कि. चीनी, १४६८ लीटर दूध, १४६८ पैकेट चायपत्ती, १४६८ साबून।

(ब) रामकृष्ण सेन्टर ऑफ साउथ अफ्रिका, फोनिक्स ने अपने जोहान्सबर्ग उप-केन्द्र के द्वारा जून, २०२० में निम्नलिखित सामग्रियों का वितरण किया –

१९१० कि. चावल, २०८ कि. मेज मील, ९५ कि. फोर्टीफायड सेरील, १०७ कि. पोरीज, ११५० कि. दाल, १६७१ कि. आलू, १२०० कि. प्याज, ९८३ कि. अन्य सब्जियाँ, ८५ कि. एसोर्टेज स्पाइसेस, ३२० कि. नमक, लीटर खाद्य तेल, ४५० केन टीन्ड फूड, ४० किलो सर्फ, ३२४ लीटर दूध, ३०,००० बैग चायपत्ती, २२० कि.ग्रा. चीनी, २५६ कि.ग्रा. नारंगी, १३५ कि.ग्रा. बिस्कुट, ३५० माचीस बाक्स, ६७० साबून, १०० फेसमॉक्स, १०० सेनेटेनरी पैड, ३०० नेपकीन आदि। इसके अतिरिक्त १० परिवारों को सप्ताह में तीन बार १-१ लीटर दूध और १ पैकेट ब्रेड दिया गया। ५ रेन वाटर हार्वेस्टींग टैंक लगाये गये।

श्रीलंका

रामकृष्ण मिशन, श्रीलंका ने १६ से २८ जून तक ३८९ परिवारों में १६३० कि.ग्रा. चावल, ५१६ कि. आटा, ६० कि. नूडल्स, ४१३ कि. दाल, ७१ कि. सोयाबीन, १२२ कि. नमक, २२२ कि. चीनी, २०३ कि. हेल्थ ड्रीन्क, २० कि.दूध-पाउडर और ३४० पैकट साबून वितरित किए गए।

बाँगलादेश

रामकृष्ण आश्रम और रामकृष्ण मिशन, बागेरहाट के द्वारा २८ मार्च से २८ जून, २०२० तक बागेरहाट के खुलना और

सातखीरा जिले के ८६१ परिवारों को निम्नलिखित सामग्रियाँ बाँटी गयीं – २५४४ कि.ग्रा. चावल, ४८० कि. चिउड़ा, ६११ कि. दाल, ६५१ कि. आलू, २४२ कि. नमक, २४० कि. खाद्य तेल, ४८० लीटर पानी, ५३७ साबून, और ५० फेसमॉस्क ।

श्रीरामकृष्ण आश्रम और रामकृष्ण मिशन, चाँदपुर ने ३१ मार्च, २०२० से ६ जून तक चाँदपुर जिले के ७०० परिवारों को चावल ३५००, दाल ७०० कि., आलू २१०० कि., नमक ७००, एडीबल वायल ३५० कि. साबून १४०० वितरित किया।

रामकृष्ण आश्रम और रामकृष्ण मिशन, दिनाजपुर ने ७ अप्रैल, २०२० से २ जून तक दिनाजपुर जिले के ५०० परिवारों को ३५० कि. चावल, ३०० कि. आटा, ४०० कि. दाल, आलू ४००, खाद्य तेल २०० लीटर, नमक २५० कि., बिस्कुट २०० पैकेट और साबून ५०० पैकेट वितरित किए।